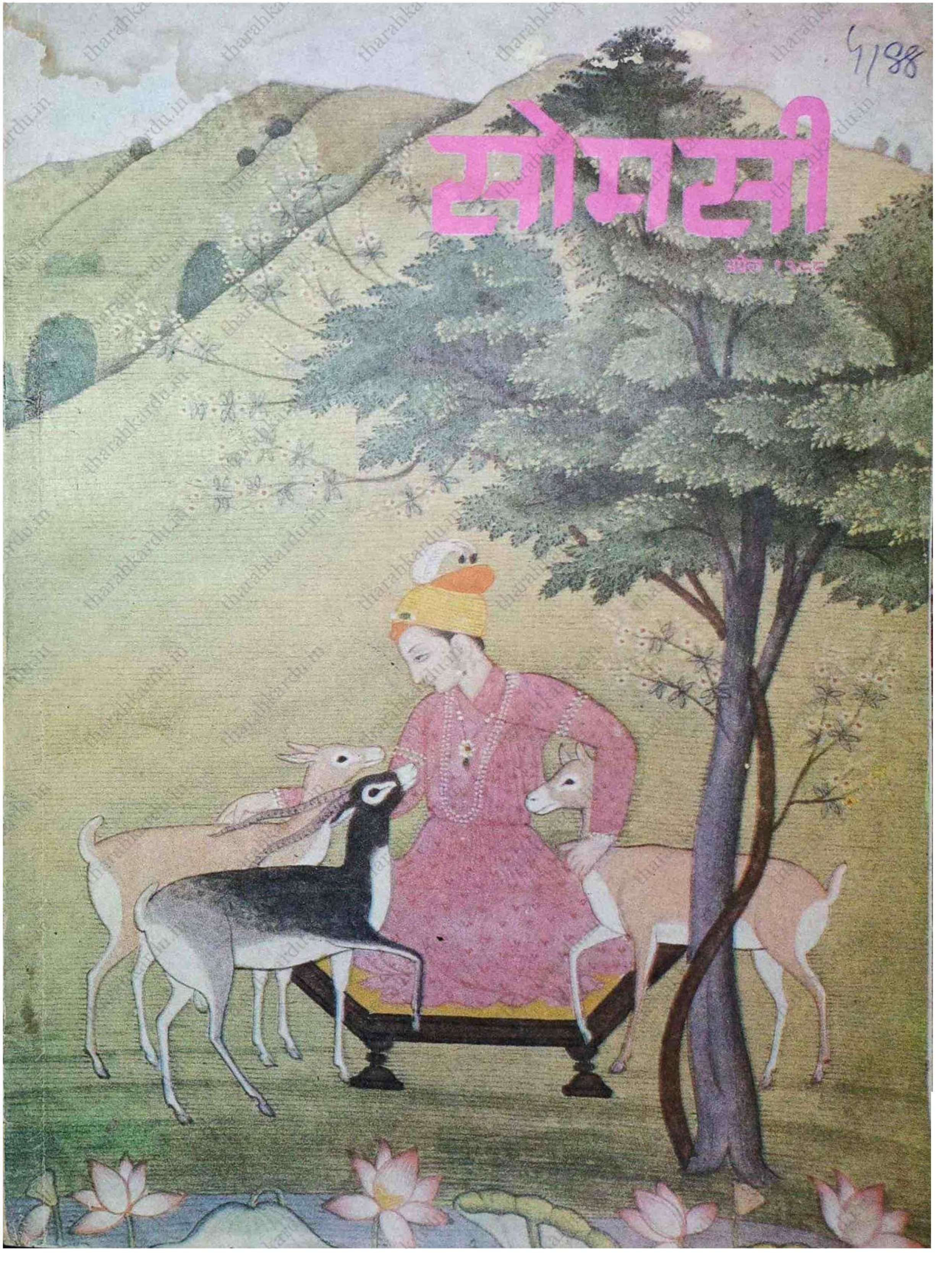

सोमसी
अप्रैल १९८८

सोमसी, अप्रैल 1988

बसन्त की छटा

वर्ष : 14 अंक : 2 पूर्णांक : 54
अप्रैल, 1988 : चैत्र-बैशाख 1909 शक : 2044 (वि०)

सोमसी

पर्वतीय कला, संस्कृति और साहित्य की
त्रैमासिक शोध पत्रिका

संपादक

डॉ० बंशीराम शर्मा

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी
संगरमल भवन, क्लिफ एण्ड एस्टेट, शिमला-171001

सम्पादक : डॉ० वंशीराम शर्मा,
सचिव,
हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी,
शिमला-171001

त्रैमासिक : जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य

अंक: अप्रैल, 1988

सम्पादन सहयोग : सरोज सांख्यायन

प्रूफ शोधन : निर्मल कौशल

आवरण : ओम सुजानपुरी

पारदर्शियां : रमेश पठानिया/हाकम शर्मा

वार्षिक मूल्य—12/- एक प्रति—3/-

प्रकाशक : हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी,
संगरमल भवन, क्लिफ एण्ड एस्टेट,
शिमला-171001

विषय सूची

लेख	लेखक	पृष्ठ
सोऽहम्	पं० श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी	2
लाहुली जनजाति को बौद्ध धर्म की देन	के० अंगरूप लाहुली	11
स्व० लाल चन्द प्रार्थी के व्यक्तित्व तथा चिन्तन के कुछ अछूते प्रसंग	बिहारी लाल "बहार"	16
हिमाचल प्रदेश : एक भौगोलिक अध्ययन	डॉ० हरिराम जसटा	33
भुण्डा यज्ञ में जन सहयोग	लोक नाथ मिश्रा	42
हिमाचल प्रदेश के शिल्पकार--श्री मेनका राम	विनोद हिमाचली	46
स्वतन्त्रता संग्राम में हिमाचल प्रदेश का योगदान	डॉ० पद्मचन्द कश्यप	51
मण्डयाली लोक गीत--एक अध्ययन	डॉ० कांशीराम आत्रेय	55
किन्नौर क्षेत्र में प्रचलित-धार्मिक गीत	डॉ० सुरजीत सिंह पटियाल	58
सुबाथु जनपद एवं धार्मिक आस्था	नरेन्द्र अरुण	65
राजा रघुनाथ सिंह रईस गुलेर	डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा	71
बिजट देवता मन्दिर--बरायला (राजगढ़)	बालक राम जसवाल	75
कांगड़ा घाटी में बहने वाली नियुगल खड्ड	रतन लाल चौधरी	78
कुल्लू जनपद में बिरशू	डॉ० सूरत ठाकुर	81
भटियात का चमत्कारी देवता नाग विणतरु	धर्मचन्द कौशल	83
कानम के मठ	अशोक हंस	86
पाण्डुलिपि परिचय	स्वर्ण कान्ता शर्मा	89
पुस्तक समीक्षा	डॉ० धर्मस्वरूप गुप्ता	92
अकादमी द्वारा साहित्य पुरस्कार वितरण समारोह		94
गतिविधियां		97

सम्पादकीय

सोमसी का प्रस्तुत अंक गत अंकों की भांति सामग्री की विविधता से युक्त है। गत अंकों में प्रकाशित सामग्री को पाठकों ने पसन्द किया है और अपनी रुचि के अनुसार संग्रहणीय पाया है। हमें इस बात का एहसास है कि गत वर्ष पत्रिका में सुधार लाने के लिए कुछ निष्ठापूर्ण प्रयासों के बावजूद भी पत्रिका का वांछित स्तर नहीं बन पाया। इसका मुख्य कारण मुद्रण सम्बन्धी कठिनाई रही। मुद्रक को समय पर सामग्री उपलब्ध करवाने के बाद भी अंकों का प्रकाशन समयबद्ध नहीं किया जा सका। यही कारण है कि प्रस्तुत अंक इतना बिलम्ब से पाठकों तक पहुंचा है। इस स्थिति को देखते हुए प्रबुद्ध पाठक हमें बिलम्ब के लिए पूर्व की भांति क्षमा करेंगे, ऐसा निवेदन है।

प्रस्तुत अंक में स्वर्गीय चन्द्रधर शर्मा गुलेरी का मूल निबन्ध "सोऽहं" सम्मिलित किया गया है। इसकी प्रस्तुति डॉ० मनोहरलाल ने की है। श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी उन साहित्यकारों में से एक हैं जिनका सानी हिन्दी साहित्याकाश में मिलना कठिन है फिर भी बहुत देर तक यह साहित्यकार अपनी तीन कहानियों 'उसने कहा था', 'बुद्धू का काँटा' तथा 'सुखमय जीवन' के लिए ही जाने जाते रहे। उनकी कविता तथा निबंध सम्बन्धी देन से बहुत से लोगों का परिचय नहीं हो पाया। डॉ० मनोहरलाल ने गुलेरी साहित्य को प्रकाश में लाकर सराहनीय कार्य किया है।

श्री के० अंगरुप लाहुली ने अपने लेख 'लाहुली जनजाति को बौद्ध धर्म की देन' से सुदूर लाहुल-स्पिति के धार्मिक विश्वासों के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की है। बौद्ध धर्म हिमाचल प्रदेश के जनजातीय क्षेत्रों में प्रचलित महत्वपूर्ण धार्मिक आस्था है। श्री बिहारीलाल 'बहार' स्वर्गीय लालचन्द प्रार्थी के मन्त्रित्वकाल में उनके निजी सचिव रहे हैं। उन्होंने प्रार्थी जी के चिन्तन के अछूते प्रसंगों पर सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला है। डॉ० हरिराम जसटा का प्रदेश के भौगोलिक अध्ययन से सम्बन्धित

लेख परिचयात्मक है और प्रदेश के सम्बन्ध में जानकारी चाहने वालों के लिए उपयोगी रहेगा। श्री लोकनाथ मिश्रा ने प्रदेश के प्राचीन तथा महत्वपूर्ण उत्सव 'भुण्डा' के सम्बन्ध में जन सहयोग का वर्णन किया है। शोधकर्ताओं के लिए इस प्रकार की सामग्री बहुत उपयोगी होगी। 'प्रदेश के शिल्पकार' श्री मेनका राम के सम्बन्ध में श्री विनोद हिमाचली का जानकारीपूर्ण लेख निश्चय ही पाठकों को लाभान्वित करेगा। इनके अतिरिक्त डॉ० पद्मचन्द कश्यप का 'स्वतन्त्रता संग्राम में हिमाचल प्रदेश का योगदान', डॉ० सुरजीत पटियाल का 'किन्नौर क्षेत्र में प्रचलित धार्मिक गीत', प्रो० नरेन्द्र अरुण का सुबाथु जनपद एवं धार्मिक आस्था', डॉ० ब्रहमदत्त शर्मा का 'रघुनाथ सिंह रईस गुलेर', बालकराम जसवाल का 'विजट देवता मन्दिर बरायला'' श्री रत्नलाल चौधरी का कांगड़ा घाटी की नियुगल खड्ड पर लेख और अन्य रचनाएं भी पाठकों को नई जानकारी उपलब्ध कराती हैं।

पत्रिका में प्रकाशनार्थ उपयुक्त सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध न होने के कारण स्तरीय रचनाओं के चयन में कठिनाई होना स्वाभाविक है। पत्रिका का सम्बन्ध मुख्यरूप से हिमाचल प्रदेश तथा सामान्य रूप से पर्वतीय क्षेत्रों के साथ होने के कारण सामग्री प्राप्त करने में कठिनाई है, परन्तु ऐसा नहीं है कि इन क्षेत्रों के सम्बन्ध में समग्र सांस्कृतिक परिवेश की खोज हो चुकी हो। अतः विज्ञ विद्वानों से खोजपूर्ण सामग्री भेजने का अनुरोध है। पत्रिका का अक्तूबर अंक प्रदेश के लोकनाट्यों से सम्बंधित विशेषांक होगा, इसके लिए भी सामग्री की आवश्यकता रहेगी। विशेषांक में विभिन्न लोक नाट्यों के वार्तालाप के मूल आलेख ही प्रकाशित किए जाएंगे ताकि शोधकर्ताओं को लोक नाट्यों की मूल तथा विश्वसनीय सामग्री उपलब्ध हो सके।

-बंशीराम शर्मा

गुलेरी जी का 'सोऽहं'

पं० श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे। वे मूलतः दर्शन के विद्यार्थी थे और दर्शन में ही एम० ए० करने के लिए प्रयत्नशील थे पर दैवयोग से उन्हें इस दिशा में सफलता नहीं मिली। उनके निबंध साहित्य में 'सोऽहं' एक ऐसा लम्बा निबंध है जो दर्शन को आधार बनाकर एक गंभीर गुत्थी को सुलझाने का सरल प्रयास है। इस निबंध में उन्होंने ब्रह्म, ब्रह्माण्ड तथा जीवात्मा की स्थिति का निरुपण किया है। भारतीय दर्शन में अद्वैत भावना का 'सोऽहं' 'एकोऽहं बहुस्याम्' तथा 'अहं ब्रह्मास्मि' प्रभृति रूपों में विशद चित्रण मिलता है।

गुलेरी जी तत्ववेत्ता थे। उन्हें जहां कहीं भी किसी विषय पर गलत या अन्तर्विरोधी विचार-धाराओं और मान्यताओं से साक्षात् होता था वे सटीक प्रमाणों तथा तर्क सहित खण्डन-मण्डन कर-के सही निष्कर्ष तक पहुंचने का प्रयास करते थे। 'सोऽहं' निबंध भी उनकी इस अनुसंधानवृत्ति का सूचक है। इस में उन्होंने ब्रह्म तथा ब्रह्माण्ड विषयक भारतीय विचारधारा के विरुद्ध उठी अंग्रेजी चिन्तन को आड़े लेकर भारत-वर्ष के हिन्दू धर्म के दार्शनिक मूल्यों की मीमांसा की है। इस निबंध के माध्यम से हम मात्र बीस वर्षीय उस मेधावी युवक गुलेरी का परिचय पाते हैं जो चिन्तक के रूप में 'समालोचक' का सफल सम्पादन भी कर रहा था। गुलेरी जी ने इसी शीर्षक से एक कविता भी लिखी थी जो नवम्बर १९०७ की 'सरस्वती' में छपी थी। इसकी विषयवस्तु दार्शनिक नहीं है। भारतीय दर्शन को आधार बनाकर तथ्याख्यान पर 'सोऽहं' निबंध पहली बार 'समालोचक' के अगस्त, सितम्बर तथा अक्तूबर, नवम्बर, १९०३ ई० के अंकों में धारावाहिक रूप में छपा था। यहां इस महत्वपूर्ण निबंध को अविकल रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। डॉ० मनोहर लाल ने बड़े परिश्रम से इस निबन्ध की प्रति उपलब्ध करवाई है। हम उनके आभारी हैं।

—सम्पादक

सोऽहम्

O पं० श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी

"सोऽहम्" वह मैं हूं-यह बात भारतवर्ष के हिन्दू के सिवाय और कोई नहीं कहता। इसी बात के कहने से हिन्दू, हिन्दू है, इसी में हिन्दू का हिन्दूत्व है, हिन्दू का हिन्दू-धर्म है। 'सोऽहम्' हिन्दू का लक्षण है, हिन्दूत्व का लक्षण है, हिन्दूधर्म का लक्षण है।

बात क्या है? सो समझ लेनी चाहिए।

ब्रह्म और ब्रह्माण्ड सृष्टिकर्त्ता और सृष्टि इन दोनों में क्या भेद है? क्या सम्बन्ध है? इस विषय में प्रधानतः दो ही मत हैं। एक मत तो यह है कि ब्रह्माण्ड और ब्रह्म, सृष्टिकर्त्ता और सृष्टि एक ही पदार्थ हैं अर्थात् ब्रह्म ही ब्रह्माण्ड का उपादान है, सृष्टिकर्ता ही सृष्टि का उपादान है। 'उपादान' किसे कहते हैं? जिसके द्वारा कोई वस्तु निर्मित हो, वही उस वस्तु का उपादान है। जैसे, मृतिका घट का उपादान। अतएव इस मत के अनुसार ब्रह्म जो पदार्थ है, ब्रह्माण्ड भी उसी पदार्थ से बना है। ब्रह्माण्ड ब्रह्म से पृथक् नहीं है। इस मत के बारे में यही प्रधान बात है; इस सम्बन्ध में जो और अवान्तर बातें कहना आवश्यक होंगी आगे कही जावेंगी। दूसरा मत यह है कि ब्रह्म ब्रह्माण्ड से, सृष्टिकर्त्ता सृष्टि से बिल्कुल पृथक है। सृष्टि के पहले सृष्टि का उपादान कुछ भी न था। सृष्टिकाल में सृष्टिकर्त्ता ने अपनी असीम शक्ति से न मालूम कैसे जगत् बना दिया। सृष्टिकर्त्ता स्वयं जो वस्तु है, सृष्टि जगत् वह वस्तु नहीं है; उस वस्तु से बिल्कुल पृथक और भिन्न प्रकृति की चीज है। इन दोनों मतों में प्रथम मत हिन्दुओं का है, दूसरा कृस्तान प्रभृति का। यह नहीं कि प्रथम मत भारत से बाहर और कहीं प्रचारित ही नहीं हुआ। बात यह है कि जैसे यह भारत में प्रबल है वैसे और कही नहीं। इसलिए यह 'भारत वर्ष के हिन्दुओं का मत' इस नाम से प्रसिद्ध है।

दोनों मतों में कौन सत्य है? कौन ग्रहणयोग्य है? इस मत की दो प्रकार से मीमांसा हो सकती है और दोनों ही तरह से हिन्दू का मत ही पक्का मालूम होता है।

पहली बात यह है कि जगत् यदि जगदीश्वर से पृथक है तो फिर जगदीश्वर असीम नहीं हो सकता, उसे ससीम होना पड़ेगा। जहां दो वस्तु हों वहां कोई भी असीम नहीं हो सकती दोनों ही

पदार्थ ससीम हो गए । क्रस्तान प्रभृति अपरधर्मावलम्बी यह कहतेहैं कि जगदीश्वर जगत् से पृथक् हो कर भी जगत् में विराजमान है अतएव ससीम नहीं है। किन्तु जगत् में सर्वत्र विद्यमान होना और जगत् होना–यह दोनों एक बात नहीं हैं। अतएव जगदीश्वर यदि जगत् में केवल विद्यमान ही है, जगत् नहीं है तो जगत् में जगदीश्वर को छोड़कर कुछ और भी है और उनके होने ही से जगदीश्वर को ससीम होना पड़ा। जहां दो या उससे अधिक वस्तु हो, वहां सीमाज्ञान अपरिहार्य है। दूसरी बात यह है कि सृष्टि का कोई उपादान नहीं था, इस बात की हम भावना नहीं कर सकते। कोई वस्तु एक बेर कुछ भी नहीं रही हो। यह कल्पना मनुष्य की शक्ति के बाहर है, मनुष्य मन के लिए असाध्य है। मनुष्य इसे सोच नहीं सकता, इसकी धारणा नहीं कर सकता, तो जो कुछ नहीं था, वह अचानक हो पड़ा, यह बात कैसे मन में आवे? जो इस मत के पक्षपाती हैं वे कहते हैं कि जगदीश्वर की शक्ति असीम है, उसे कुछ भी असाध्य नहीं है; मनुष्य जिस बात को समझ भी नहीं सकता, उसे वह अनायास कर सकता है। अतएव जिस बात की मनुष्य धारणा नहीं कर सकता वह असम्भव या असत्य हो यह कोई बात नहीं। यह है तो ठीक किन्तु जगदीश्वर से सब कुछ साध्यायत है, यों मानकर सब कुछ उसने किया यह कहना कोई बात नहीं। विचार करते ही जो वह सब कुछ कर सकता है यही उसका प्रकृत असीमत्व और अनन्तत्व है। किन्तु असीम और अनन्त मानते हुए उसने सब कुछ किया यह मानने की कोई आवश्यकता नहीं। अतएव जिस प्रणाली की सृष्टि को मनुष्य बूझ नहीं सकते उस प्रणाली से जगदीश्वर ने सृष्टि नहीं की—यह कहना जगदीश्वर की असीमशक्ति और उस के अनन्तत्व का अस्वीकार करना नहीं है। यहां विचार्य विषय यह है कि जिस मत के अनुसार सृष्टिक्रिया मनुष्य के लिये दुर्बोध्य है उस मत के अवलम्बन की आवश्यकता है कि नहीं। प्रत्युत्तर में सब ही यों कहते हैं कि सृष्ट जगत् स्रष्टा जगदीश्वर से इतना अधम और निकृष्ट है कि जगत् जगदीश्वर को एक पदार्थ मानने से जगदीश्वर की नितान्त ही अवमानना करनी होती है उसे नितान्त ही अधम मानना पड़ता है। किन्तु जगदीश्वर अधम पदार्थ का सृष्टिकर्ता है यों कहने से जगदीश्वर की क्या उतनी ही अवमानना नहीं की गई, उसे उतना ही अधम नहीं दिखाया गया? क्या केवल अधम पदार्थ होने ही से अधम होना होता है, अधम कार्य करने अथवा अधम पदार्थ प्रस्तुत करने से क्या अधम नहीं होना होता? लोक में खाली दुश्चरित्र होने ही से अधम होता है? सचरित्र होकर भी यदि दुर्नीति-पूर्ण पुस्तक लिखें तो क्या अधम नहीं हुए? तो जगत् को अपकृष्ट पदार्थ कहकर इसे जगदीश्वर का रूप, विकार या विवर्त न कहने से, इसे सृष्ट पदार्थ ही कहने से क्या ईश्वर के मान वा गौरव की रक्षा हो गई? जो यह कहते हैं उनकी बात हम नहीं समझ सकते; उनका नीतिशास्त्र कैसा है सो वही जानें, उन का मानमर्यादा विषयक संस्कार कैसा है सो वही कह सकते हैं। इस विषय में और जो वक्तव्य है सो आगे चलकर कहेंगे।

परन्तु दोनों मतों में कौन सा अच्छा है इसकी मीमांसा करने का एक और अच्छा उपाय है। जरा ध्यान लगाकर देखने से जाना जा सकता है कि दोनों मतों में विशेष पार्थक्य नहीं है।

जगत् जगदीश्वर का रूप विकार वा विवर्त है, यों कहने का जो अर्थ है जगत् जगदीश्वर की सृष्टि है यों कहने का भी अर्थ प्राय वही है। सृष्टि और सृष्टिकर्ता के बीच में क्या सम्बन्ध है यह एक पार्थिव दृष्टान्त द्वारा बहुत कुछ समझा जा सकता है। शेक्सपियर अथवा शेक्सपियरत्व एक पदार्थ है। शेक्सपियर रचित हैमलेट का चरित्राङ्कन और ही पदार्थ है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हैमलेट शेक्सपियर से पृथक् पदार्थ है। हैमलेट का चरित्र जिन सब उपकरणों से बना है, मालूम होता है कि स्वयं शेक्सपियर के चरित्र में वह सब उपकरण नहीं थे। इस अर्थ में शेक्स-पियर और हैमलेट दो भिन्न पदार्थ हैं। किन्तु और एक अर्थ में दोनों में बड़ी विभिन्नता नहीं है अर्थात् शेक्सपियर जो है, हैमलेट भी वही है। हैमलेट के शेक्सपियर से भिन्न होने पर भी हैमलेट में कुछ ऐसी चीज है जो शेक्सपियर में ही पाई जाती है और किसी व्यक्ति में नहीं पाई जाती। उस 'कुछ चीज' का नाम शेक्सपियरत्व, शेक्सपियर का सार शेक्सपियर की अस्थिमज्जा वा शेक्स-पियर, का शेक्सपियर —जो शेक्सपियर का कोई एक भाव या कार्यविशेष नहीं है जो शेक्सपियर के सकलभाव और सकलकार्यों में हैं, जिसके गुण से शेक्सपियर के भाव शेक्सपियर के भाव हैं, और किसी के या और किसी तरह के भाव नहीं है, शेक्सपियर के कार्य शेक्सपियर के ही कार्य हैं और किसी के या और किसी तरह के कार्य नही हैं, वह "कुछ चीज" अर्थात् वह शेक्सपियरत्व शेक्स-पियर का सार, शेक्सपियर की अस्थिमज्जा वा शेक्सपियर का शेक्सपियर खाली हैमलेट में ही नहीं है, शेक्सपियर रचित छोटे बड़े भले बुरे सब चरित्रों में है—लीयर में, मिरण्डा में, फालष्टाफ में ओबेरन में, मैकबैथ, मैकडफ, शाइलाक सब चरित्रों में है। मिल्टन रचित किसी चरित्र में वह शेक्सपियरत्व नहीं और शेक्सपियर रचित किसी चरित्र में मिल्टनत्व नहीं।

अगस्त 1903 यों ही सकल मानव सृष्टिकर्त्ता के सम्बन्ध में यही बात कही जा सकती है। एवं इस कथा का अर्थ यह है कि जो नयी सृष्टि की रचना करता है उसमें उसका निज कुछ वा कुछ निजत्व रहता ही रहता है। जिस परिमाण में वह **निज का कुछ** व **कुछ निजत्व** है, कम से कम उसी परिमाण में, मानवसृष्टा और मानवसृष्टि के विषय में कहा जा सकता है कि दोनों एक ही पदार्थ हैं; और मानवसृष्टि वा मानवसृष्ट पदार्थ मानवसृष्टा को लक्ष्य करके, कह सकते हैं कि सोऽहम्। शेक्सपियर का हैमलेट यदि काल्पनिक सृष्टि न होकर हमारा तुम्हारा सा सजीव वा सचेतन सृष्टि होता तो तुम हम जैसे ब्रह्म को लक्ष्य करके कह सकते हैं **'सोऽहम्'**। वैसे वह भी शेक्सपियर को लक्ष्य करके कह सकता था—**'सोऽहम्'**। कार्य से कारण भिन्न होने पर भी कार्य कारण में रहेगा ही। कृष्टानधर्मावलम्बी यूरोपीय दार्शनिकों ने भी उस बात को स्वीकार किया है। अतएव सृष्टि में सृष्टिकर्त्ता अवश्य हैं— सृष्टि में सृष्टिकर्त्ता सम्पूर्ण रुपेण पृथक हो नहीं सकता। सृष्टिकर्त्ता को कम से कम सृष्टि का आंशिक उपादान तो करना ही होगा। अन्ततः उसी अंश के सम्बन्ध से सृष्ट पदार्थ सृष्टिकर्त्ता को लक्ष्य करके कह सकता है—**सोऽहम्**। कहने में कोई दोष नहीं, कहना ही कर्तव्य है। न कहने से सृष्टिकर्ता के अस्तित्व का अस्वीकार करना हुआ। एवं सृष्टिकर्त्ता के अस्तित्व के अस्वीकार ही का नाम नास्तिकता है। अतएव कृस्तान प्रभृति

द्वैतवादियों के मतानुसार भी ब्रह्म से ब्रह्माण्ड पृथक नहीं है सृष्टिकर्त्ता से सृष्टि पृथक नहीं है। इस मत के अनुसार भी अस्तित्व एक ही है, दो नहीं, वस्तु एक ही है, दो नहीं। दार्शनिक श्रेष्ठ फेरियर ने कहा है। *The only absolute existence is an eternal mind in Permanent Synthesis with matter, अर्थात् जड़ प्रकृति के साथ अच्छेद्य भाव से संयुक्त एक ही अनन्त चैतन्य की वास्तव सत्ता है और कुछ भी नहीं है। अतएव सृष्टि से सृष्टिकर्ता को भिन्न कहने पर भी, और भिन्न कहकर विवेचना करके युक्ति सिद्ध होने पर यह अवश्य स्वीकार करते हैं कि सृष्टि में जो कुछ है सो सृष्टिकर्त्ता की ओर लक्ष्य करके कह सकता है—सोऽहंम्। अतएव विकासवाद और सृष्टिवाद दोनों ही पक्षों में सृष्टि और सृष्टिकर्त्ता का एकत्व निश्चित हुआ।

यहां एक गुरुत्तर मीमांसा आवश्यक होती है। जो क्रस्तान प्रभृति की तरह द्वैतवादी हैं वे कह सकते हैं कि ब्रह्माण्ड में जो भले बुरे समयविध द्रव्य देखे जाते हैं तो कैसे सब ब्रह्माण्ड को ब्रह्म कहें, कैसे तिक्त और मधुर को एक कहें, सुगन्ध और दुर्गन्ध को एक कहें, दया और निर्दयता को एक कहें ?

इसका प्रथम उत्तर तो यह है कि जब विकासवाद और सृष्टिवाद दोनों ही में सृष्टि और सृष्टिकर्ता का एकत्व प्रमाणीकृत हो चुका ही है, तो फिर कोई भी ऐसी आपत्ति उठाने में समर्थ नहीं है। द्वितीय और प्रधान उत्तर यह है कि यह सब विभिन्नता प्रकृत विभिन्नता नहीं है यह सब विभिन्नता मनुष्य की अवस्था विशेष का फल वा उपलब्धि मात्र है। मनुष्य जिस द्रव्य को तिक्त कह कर फैंक देता है कोई पशु उसी द्रव्य को अतिशय मधुर मानकर पेट भरके खाता है। मनुष्य की दृष्टि में जो लाल है किसी एक पक्षी की दृष्टि में वह काला है। स्थूल अवस्था में भिन्न-भिन्न द्रव्यों के भिन्न-भिन्न आकार और स्वाद रहते हैं। रासायनिक विश्लेषण द्वारा वही द्रव्य सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होकर एक ही आकार धारण करते हैं और प्रायः एक ही स्वाद देते हैं। स्थूल आकार में एक ही वस्तु स्थूल इन्द्रियों को भिन्न-भिन्न रूप में प्रतीयमान होती है। यूरोपीय वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि ताप, तड़ित् और आलोक प्रभृति जो सब स्थूल पदार्थ स्थूल इन्द्रियों के द्वारा इतने न्यारे-न्यारे अनुभूत होते हैं, सूक्ष्माकार में वे सब एक ही पदार्थ हैं। अतएव जो जगत में विभिन्नता करके जानी जाती है वह प्रकृत विभिन्नता नहीं है-स्थूल इन्द्रिय सम्पन्न स्थूल अवस्था की स्थूल उपलब्धि मात्र है जो स्थूल इन्द्रियों का शासन अतिक्रम करके स्थूल अवस्था से उन्नत हो सूक्ष्मरूप दर्शन करने में समर्थ हो गए हैं, उनके लिए जगत् में भले-बुरे का भेद नहीं हैं, प्रकृत विभिन्नता नहीं है। उनके पास तिक्त मधुर का भेद नहीं है, सुन्दर कुत्सित का भेद नहीं है, पाप पुण्य का भी प्रभेद नहीं है। जो स्थूल दृष्टि के शासन में रहकर स्थूल दृष्टि से देखते हैं वही केवल तिक्त, मधुर, पाप, पुण्य प्रमृति विभिन्नता दर्शन करते हैं और वही समस्त विभिन्नता के अधीन होकर नानाविध क्लेश भोग करते हैं और अवनति को प्राप्त होते हैं। यह जो हम जड़ पदार्थ और चैतन्य के बीच में प्रभेद करते हैं यह क्या ठीक है ? आधुनिक यूरोपीय विज्ञान कहता है कि

*फेरियर-"इन्स्टिट्यूट आफ मेटाफिजिक" नामक ग्रन्थ देखो।

जड़जगत् ही चिन्मय जगत् रूप में फूट पड़ा है, (अर्थात् जड़मय से चिन्मय बना है)। हम भी नित्य देखते हैं कि हम जिन सब जड़ द्रव्यों को भक्षण करते हैं ये केवल हमारे जड़ शोणित और जड़ अस्थि की ही वृद्धि नहीं करते हैं किन्तु हमारी चिन्ताशक्ति की भी वृद्धि करते है। शुक्रशोणित समुद्भूत सन्तान केवल जड़ नहीं चेतना सम्पन्न भी होते हैं। तो ही हमारे गुरुतुल्य एक ग्रन्थकर्ता लिख गए हैं-"जड़ जगत् चिन्मय है"। *अतएव कैसे कहें कि जड़ पदार्थ और चेतन पदार्थ भिन्न पदार्थ हैं ? कैसे यह नहीं कहें कि हम स्थूल अवस्था में स्थूल इन्द्रियों के शासन में हैं। अतएव जड़ का और चैतन्य का एकत्व देख नहीं सकते। कैसे न कहें कि जड़त्व चैतन्य की एक अवस्था मात्र ही है ? कैसे न कहें कि ब्रह्म अथवा स्थूलता शून्य चेतन्य के लिए जड़ और चैतन्य एक ही पदार्थ है ?

किन्तु ब्रह्माण्ड के भीतर प्रकृत विभिन्नता वा वैषम्य न होने पर भी यह तो अवश्य स्वीकार करना होगा कि ब्रह्माण्ड की एक स्थूल अवस्था है। ब्रह्माण्ड में प्रकृत विभिन्नता ठीक नहीं है, किन्तु एक प्रकार की विभिन्नता है। यह विभिन्नता स्थूलत्व का फल अथवा स्थूलत्व का अङ्ग वा लक्षण है। अतएव स्वीकार करते हैं कि ब्रह्माण्ड में कुछ स्थूलत्व है किन्तु उसके होते कैसे कहा जाय कि ब्रह्माण्ड और ब्रह्म एक ही पदार्थ हैं ? ब्रह्माण्ड में यदि स्थूलत्व रहता है तो ब्रह्माण्ड और ब्रह्म को एक कहने से ब्रह्म को भी स्थूल कह गया और ब्रह्म स्थूल है यह बात कहने से उसको पाप पुण्यरूप विभिन्नता और वैषम्य का विषयीभूत वा अधीन करना हुआ। इसका उत्तर यह है कि ब्रह्माण्ड का स्थूलत्व ब्रह्माण्ड का नित्य गुण वा नित्य की अवस्था नहीं है-क्षणस्थायी गुण वा अवस्था मात्र है। एवं यह गुण वा अवस्था प्रकृत अस्तित्व ही नहीं-केवल क्षणिक अवस्था की क्षणिक उपलब्धि मात्र है। इस गुण वा अवस्था में प्रकृत अस्तित्व नहीं है। यह सहज ही जाना जा सकता है। मनुष्य को राग द्वेष, लोभ, मोह, प्रभृति कितनी ही स्थूल प्रवृति है मनुष्य जितनी देर उन सब स्थूल प्रभृतियों के वशीभूत रहता है उतनी देर उसे केवल कुछ क्षण स्थायी एवं विभिन्न भावों का आधार वा रणक्षेत्र इस नाम से कह कर जानना चाहिए। वह भी उन विभिन्न क्षणस्थायी भावों के अधीन रह कर अपने को प्रति मुहूर्त अलग-अलग भावों में अनुभूत करता है-अपना जो नखशिख सुदृढ़ सुनिश्चित सुस्थिर समतामय अस्तित्व है उसे अनुभव नहीं करता अथवा नहीं कर सकता। स्वच्छ जल में बादल के बाद बादल की छाया पड़ने से जल की जैसी आकृति होती है, वैसे ही उस की आध्यात्मिक आकृति हो जाती है। किन्तु बादल के बाद बादल की छाया पड़ने से स्वच्छ जल की जो आकृति वा अस्तित्व है (वह जैसे स्वच्छ जल की प्रकृत आकृति वा अस्तित्व) नहीं हैं, भिन्न-भिन्न भावों के अधीन हुए मनुष्य की जो आकृति वा अस्तित्व है

*देखो, स्वर्गीय भूदेवमुख्योपाध्याय सी. आई. ई. के "पारिवारिक प्रबन्ध का उत्सर्गपत्र।" यहां यह कहना अनुचित नहीं होगा कि भारत के सुपुत्र विज्ञानाचार्य अध्यापक जगदीशचन्द्र बसु ने सुकुमार विज्ञान से जड़ पदार्थ में चेतना पूरी तरह सिद्ध कर दी है।

वह भी वैसे ही मनुष्य की प्रकृत आकृति वा अस्तित्व नहीं है। किन्तु मनुष्य ज्यों ही लोभ, मोह, मात्सर्य प्रभृति स्थूल इन्द्रिय मूलक स्थूल प्रवृत्तियों के शासन को उलांघता है त्यों ही वह एक सुदृढ़, सुनिश्चित, सुस्थिर, सुन्दर, सुनिर्मल, समान आकार को धारण झटपट ही कर लेता है।

जगत् में कोई भी उस आकार का परिवर्तन वा विकार नहीं कर सकते। तब मनुष्य का आकार वा अस्तित्व मेघों की छाया से विमुक्त स्वच्छ जल के आकार वा अस्तित्व के अनुरूप वा समान है। अतएव समझा जा सकता है कि ब्रह्माण्ड में जो स्थूलत्व है वह क्षणस्थायी अवस्था मात्र है प्रकृत अस्तित्व नहीं है। अतएव ब्रह्म के आंशिक मायामय क्षणस्थायी रूप के ब्रह्म से ही उद्भूत वा प्रक्षिप्त होने पर भी ब्रह्म तद्द्वारा दूषित नहीं होता, क्योंकि ब्रह्म नित्यतामय है। अतएव अनित्य द्वारा हारने का नहीं एवं ब्रह्म उसके अधीन नहीं है वही ब्रह्म के अधीन है। इसका कारण यह है कि यह भी ब्रह्म की इच्छा में सम्भूत है – इन्द्रजाल जैसे ऐन्द्रजालिक का इच्छासम्भूत है वैसे यह भी ब्रह्म की इच्छा में सम्भूत है एवं इन्द्रजाल जैसे ऐन्द्रजालिक के प्रकृत अस्तित्व को स्पर्श नहीं करता, वैसे वह भी ब्रह्म को स्पर्श नहीं कर सकता। यह कैसे स्थूल रूपधारण करता है वा स्थूलता प्रकाश करता है, यह वही जानता है। किन्तु चाहे जिस कारण से करे, वह जब अपने को लेकर आप ही इस रूप को धारण करता है तब और कोई बात ही नहीं हो सकती। दूसरे के बारे में 'भला बुरा' काम करना कहा जाता है। अपने को लेकर भला बुरा काम करने की कोई बात ही नहीं हो सकती। अतएव ब्रह्माण्ड में स्थूलत्व रहने पर भी ब्रह्माण्ड और ब्रह्म एक है इस बात के कहने में कोई दोष हो नहीं सकता। फलतः ब्रह्माण्ड यदि ब्रह्म को लक्ष्य करके कहे-सोऽहम् तो ब्रह्माण्ड सब बातों का सार ही कहता है।

हम में से जिसने हमारे शास्त्र नहीं पढ़े हैं, अंग्रेजी शास्त्र ही अधिक पढ़ा है उनके लिये यहां दो तीन बातों की मीमांसा करने की चेष्टा करते हैं। उनमें से कुछ-कुछ कहा करते हैं कि यदि ब्रह्माण्ड ब्रह्म ही है तो ब्रह्माण्ड में जितने पदार्थ हैं सब ही ब्रह्म हैं। और ऐसा होने से तुम भी ब्रह्म, मैं भी ब्रह्म, वृक्ष भी ब्रह्म, पत्थर भी ब्रह्म, ईंट भी ब्रह्म सब ही ब्रह्म। ऐसा होने से जगदीश्वर एक नहीं हुआ, जगत् में जितने पदार्थ हैं उतने ही जगदीश्वर हैं। किन्तु इसकी अपेक्षा और हास्यास्पद बात हो नहीं सकती। जो ऐसा तर्क करते हैं वह ब्रह्म किसे कहते हैं सो नहीं जानते और सोऽहम् क्या है यह भी नहीं जानते। वे यह नहीं जानते कि ब्रह्म एक ही पदार्थ है, विभाज्य नहीं हैं, एवं ब्रह्म केवल ज्ञान के द्वारा जाना जा सकता है चक्षु या अन्य किसी इन्द्रिय के द्वारा प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता। अतएव वे जब यह कहते हैं कि जगत् में जितने पदार्थ हैं वे ब्रह्म हैं तब वे इन्द्रियातीत पदार्थों को इन्द्रियप्रत्यक्ष पदार्थों के अवस्थापन्न करते हैं। उनकी और एक भूल है कि जहां प्रकृत संख्या नहीं है वहां संख्या आरोप वा कल्पना की जाती है। जगत् में पदार्थों की संख्या है, स्थूल इन्द्रिय द्वारा जगत् देखते ही ऐसा भ्रम हो जाता है। प्रकृत ज्ञानचक्षु से देखने पर जगत् में भिन्न-भिन्न पदार्थ वा बहुसंख्यक पदार्थ देखे नहीं जाते, प्रत्युत भिन्न-भिन्न पदार्थ

एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न रूप आकार या अवस्था जाने जाते हैं। आधुनिक सूक्ष्म और उन्नत विज्ञान ने भी इस बात की सूचना आरम्भ की है। अतएव ब्रह्म जैसे स्थूलचक्षु से देखने की चीज नहीं हैं। ज्ञानचक्षु से देखने की चीज है, वैसे ही ब्रह्म के साथ ब्रह्माण्ड वा जगत् का सम्पर्क निर्णय करती वेर जगत् को स्थूलचक्षु से न देख कर ज्ञान चक्षु से देखना उचित है। ज्ञानचक्षु से देखने पर जगत् में एकाधिक पदार्थ नहीं दिखाई देंगे एकाधिक ब्रह्म भी नहीं दिखाई देगा।

दूसरी बात, ज्ञानचक्षु को छोड़कर स्थूलचक्षु द्वारा देखने पर भी जगत् में जितने पदार्थ हैं उतने ब्रह्म नहीं देखे जाते। 'सोऽहम्' इसका अर्थ यह है कि ब्रह्म जो पदार्थ है मैं (अथवा जगत्) भी वही पदार्थ है। यह इसका अर्थ नहीं है कि मैं ही ब्रह्म हूं। तो कैसे कहते हो कि ब्रह्म और ब्रह्माण्ड को एक पदार्थ कहने में तुम हम वृक्ष-पत्ता घरबार सबको ही ब्रह्म वा जगदीश्वर कहना हुआ? समस्त समुद्र जो पदार्थ हैं एक छींटा जल भी वही पदार्थ है किन्तु ऐसा कहने से एक छींटा जल क्या समुद्र हो गया? एक छींटे जल में क्या समुद्र के तिमि तिमिङ्गिल खेलते हैं, समुद्र के तरङ्ग उठते हैं, समुद्र का महाप्रलय उद्भूत होता है? एक अंगुलि जो पदार्थ है समस्त देह भी वह पदार्थ है। किन्तु उस से क्या एक अंगुलि देह है? मन का एक भाव जो पदार्थ हैं, मन भी वही पदार्थ है। किन्तु यह कहने से मन का एक भाव क्या मन है? तौ फिर सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान्, सर्वानन्द ब्रह्म जो पदार्थ है जगत् भी वही पदार्थ है यों कहने से कैसे कहा जाता है कि तू मैं, बेल-पत्ता, घट-बट एक-एक सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान सर्वानन्द ब्रह्म हुआ? सोऽहम् का प्रकृत अर्थ समझने की चेष्टा न करने से ही ऐसा प्रलाप बका जाता है।

जिनकी बात कह रहे हैं, उनमें से बहुत से यह कह बैठते हैं कि ब्रह्म अति महत् पदार्थ है। अतएव जब देखते हैं कि जगत् में मनुष्य को छोड़कर और कोई वा और कुछ प्रकृत महत् नहीं है, कोई प्रकृत महत्कार्य नहीं करता तौ क्यों करके जगत् और जगदीश्वर का एकत्व स्वीकार करके जगत् के सकल पदार्थों को महत् कहें? वह कहते हैं कि जो सब पदार्थ अचेतन हैं वह सब तौ कोई काम करते ही नहीं, जो पदार्थ चेतन हैं उन सब मे मनुष्य को छोड़कर और कोई महत्कार्य करता ही नहीं, केवल आत्मसेवा में ही नियुक्त रहते हैं। यह क्या ठीक है? जगत् में क्या कोई एक ऐसा समय नहीं था जब यहां मनुष्य नहीं थे? किन्तु उस मनुष्यशून्य जगत् ने ही क्या मनुष्य प्रसव नहीं किये? यदि किए हैं तौ क्यों कहते हो कि जगत् में जो मनुष्य नहीं है वह महत् कार्य नहीं करते वा कर सकते? तुम आपत्ति उठाओगे, मैं यूरोपीय विज्ञान का विवर्त्तवाद नहीं मानता वा नहीं समझता। अच्छा वही सही। तुम मनुष्य हो अतएव तुम महत् हो -- यह तौ मानो, यह तौ समझो, किन्तु कहो तौ, तुम जिनका आहार करते हो, अर्थात् जगत् में जो मनुष्य नहीं हैं, वे तुम्हारे देह में बल संचार करते हैं इसीलिये तुम जगत् में महत् कार्य कर सकते हो या और कुछ? यदि यही है तौ कैसे कहते हो कि जगत् में जो मनुष्य नहीं हैं वे महत् कार्य सम्पादन करते ही नहीं? तुम जिस यूरोप की इतनी बड़ाई करते हो उसी यूरोप का विज्ञान आज क्या

कहता है ? कहता है कि पृथ्वी के कीटानुकीट, अणुपरमाणु, क्षुद्र बृहत्, सचेतन, अचेतन सकल पदार्थ ही जगदीश्वर ने विपुल ब्रह्माण्ड के विशाल उद्देश्यों के साधन में नियुक्त कर रखें हैं। तुम आत्म-प्रधान आत्मसर्वस्व प्रकृत ब्रह्मज्ञानी *नहीं हो, तो मन में आता है कि तुम जो करते हो वह जगत् का ही काम है तुम्हारा जो उद्देश्य है, विपुल ब्रह्माण्ड का यही उद्देश्य है, अनन्त ब्रह्म का भी वही उद्देश्य है। तो तुम जानते नहीं हो, कि अनन्त ब्रह्म की दृष्टि में तुम बालू के कण भी नहीं हो। तो तुम्हारे मन में यह नहीं है कि असीम अनन्त ब्रह्म का असीम अनन्त ब्रह्माण्ड की ट्रेन न मालूम किस असीम अनन्त उद्देश्य से तुम हम, राजा-प्रजा, पर्वतप्रान्तर, लता-पत्ता, पशु-पक्षी, कीट पतंङ्ग, धूल कादा सब पदार्थों को समभाव से उसी एक उद्देश्य के साधक मानकर असीम वेग से अनन्त मार्ग पर छूट रही है। तुम क्या अब कहते हो कि जगत् में मानुष के सिवाय महत् और कुछ नहीं, मानुष व्यतिरिक्त महत्कार्य और कोई करता ही नहीं ! तो तुम भारत के हिन्दू नहीं हो। 'सोऽहम्' भारत के हिन्दुओं की बात है। तुम तो भारतवर्ष के हिन्दू नहीं और तुम क्या भारत या यूरोप, किसी देश के प्रकृत मनुष्य नहीं।

कई ऐसी आशङ्का करते हैं कि मनुष्य यदि अपने को ब्रह्म मानते हैं, तो उसके अहङ्कार की सीमा ही नहीं रहेगी। हम कहते हैं, यह नहीं, मनुष्य जब अपने को ब्रह्म मान लेगा तो उसके अहंकार का नाश होगा। जो हिन्दू कहता है 'सोऽहम्' 'वह मैं हूं' वह हिन्दू वास्तव में कहता है कि जगत् में खाली मैं ही वह नहीं हूं, जो कुछ है सब वही है जहां सब ही ब्रह्म है वहां एक को ब्रह्म कहने से अहंकार व अभिमान करने का अवसर या उपाय कहां है ? और जहां मनुष्य अपने को आप ही कहता है -'सोऽहम्' यहां अहं ज्ञान तो होने ही नहीं पाता, फिर वहां अहंता का स्थान कहां है ? भारत के साहित्य में भी इसका प्रमाण नहीं है। यूरोप में एक समय धर्म के नाम से अनेक अत्याचार और हत्या काण्ड हो चुके हैं। प्रोटेस्टेन्ट और अन्यान्य धर्म सम्प्रदायों के अनेक महापुरुष मारे गये हैं किन्तु उन्होंनें आनन्द से प्राण विसर्जन किया है तथापि अपने-अपने धर्म विषयक मत का परित्याग वा परिवर्तन नहीं किया। उस बड़े इतिहास को पढ़कर विस्मित और चमत्कृत होते हैं। किन्तु उस साहित्य में एक ऐसी बात पाई जाती है जो भारत के साहित्य में नहीं पाई जाती। वह बात यह है—उन सब महापुरुषों ने धर्म के नाम से धर्मच्युत होना अस्वीकार किया यह नहीं, किन्तु आत्मस्वाधीनता (individual judgment) की दुहाई देकर अस्वीकार किया। उस असाधारण वीरत्व और महत्व की जड़ में आत्म वा अहं दिखाई दे रहा है। हिन्दुओं के साहित्य में प्रह्लाद की कथा वैसी ही कथा है—वैसी वा तद्पेक्षा अधिक वीरत्व और महत्व की कथा है किन्तु उस कथा में अहं वा "आत्मैव" का लेशमात्र भी नहीं है। उस कथा में विष्णु विद्वेषी हिरण्यकशिपु ही अहं वा आत्मैव की प्रतिमूर्त्ति है-प्रह्लाद में अहं वा आत्मा का बिल्कुल अभाव है। प्रह्लाद ने अपने नाम पर, आत्मस्वाधीनता के नाम पर सब यन्त्रणाओं को

*साम्प्रदायिक अर्थ में इस शब्द का व्यवहार नहीं किया गया है।

सहकर अन्तपर्यन्त वैष्णव धर्म धारण किया हो सो नहीं, विष्णु के नाम पर सब यंत्रणा सहन करके उसने अन्त पर्यन्त वैष्णव धर्म धारण किया। जहां विष्णु ही सब है, वहां सो प्रह्लाद और क्या है ? विष्णु पुराण में प्रह्लाद-चरित्र पाठ करने से मालूम हो जायेगा कि यह बात सत्य है या नहीं। इसीलिए हिन्दुओं के साहित्य में, धर्म के इतिहास में, महत्व और वीरत्व की कहानियों में अहं वा 'आत्मैव' की गन्ध भी नहीं - कृष्टधर्मावलम्बी यूरोप के साहित्य में, धर्म के इतिहास में, महत्व और वीरत्व की कहानियों ने अहं वा आत्मैव बड़ा ही प्रबल है। भारत के 'सोऽहम्' ने भारत और यूरोप के बीच में यह अपूर्व भेद उत्पन्न किया है. भारत को यूरोप की अपेक्षा इतना श्रेष्ठ कर दिया है। भारत का सोऽहम् भारत के हिन्दुओं को बड़े गौरव की चीज है। मनुष्य वहीं पर ब्रह्म है, एक हिन्दू को छोड़कर और कोई भी इतनी ऊंची भावना को भावित करने में समर्थ नहीं है. और किसी को ऐसी बात सोचने का साहस है ही नहीं। इस विशाल बात को मन में धारण कर सके ऐसी मानसिक विशालता ही और किसी को नहीं किन्तु यह कहकर अभिमान नहीं किया जाता है। सोऽहं किसे कहते हैं ? वह यदि समझ लिया जाये तो अभिमान किया ही नहीं जा सकता। अभिमान वा अहंकार के नष्ट हुए बिना कोई भी इस सोऽहं का अधिकारी नहीं होता। सूक्ष्मदर्शी महामति हिन्दुओं के सूक्ष्मतम अतिविराट् सोऽहं का अर्थ – प्रकृत ब्रह्मज्ञान प्रकृत आत्मज्ञान है, अपरिसीम मन अपरिसीम साहस– सब का सामञ्जस्य, सब का महत्व, सबका एकत्व और अच्युत विश्वव्यापि अस्तिव है।

हिन्दुओं के सोऽहं कहने में, हिन्दुओं के समान ब्रह्म ज्ञानी, ब्रह्दर्शी, ब्रह्मभक्त ब्रह्माण्ड ही, अपरिमित साहस-सम्पन्न विराटमना मनुष्य पृथ्वी पर और कहीं भी दृष्ट नहीं होते।

प्रस्तुति—डॉ० मनोहर लाल,
के–47, नवीन शाहदरा,
दिल्ली–110032.

कुल्लू में आयोजित पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ज्यन्ती समारोह।

लाहुली जनजाति को बौद्ध धर्म की देन

o के० अंगरुप लाहुली

हिमाचल प्रदेश की लाहुली जनजाति की अपनी ही विशेषता है। यह प्रदेश प्रसिद्ध राट्रांग दर्रे के उस पार चन्द्रा, भागा और चनाव की उपत्यका में स्थित है और तीन वादियों में विभक्त है। यहां के पुराकालीन आदिवासी किस प्रकार का जीवन यापन करते थे और उनकी जीविका उपार्जन का उपाय क्या था? इसका आज कोई अधिकृत लेखा-जोखा हमारे पास उपलब्ध नहीं है परन्तु यह सही है कि इन वादियों में हजारों वर्षों से आदिवासी निवास कर रहे थे और इन की अपनी सत्ता थी और अपनी बोली थी। इस जनजाति की सभ्यता और संस्कृति समुन्नत थी। ये लोग संगठित रुप से रहते थे। ये सभी तत्व आज भी यहां की भाषा और लोक परम्पराओं में स्पष्ट रुप से देखने को मिलते हैं परन्तु यह बड़े खेद की बात है कि स्वतन्त्रता के इतने वर्षों के पश्चात् भी लाहुल की आदिम संस्कृति को उजागर करने के प्रति विद्वान लालायित नहीं दिखाई पड़ रहे हैं। हालांकि मानव-विज्ञान और समाज-शास्त्र के लिए जनजातियों का अध्ययन अत्याधिक महत्वपूर्ण है। सामान्यतयः जनजाति या आदिवासी का अभिप्रेत अर्थ ऐसे जन समुदाय से होता है, जो किसी निश्चित भू-भाग पर निवास करता हो, एक विशिष्ट भाषा बोलता हो और एक सामान्य संस्कृति का व्यवहार करता हो[1] परन्तु वर्तमान लाहुली जनजाति के संदर्भ में उपर्युक्त अभिमत सर्वथा लागू नहीं होता क्योंकि आज की इस जनजाति में तीन मुख्य और तीन उप-बोलियों का प्रचलन है और वे विभिन्न समुदायों में विभक्त हैं। एकाध बातों को छोड़कर इनकी संस्कृतियों में भी भिन्नता है। इससे यह सिद्ध होता है कि लाहुल की वर्तमान तथाकथित जन-जातियां विभिन्न कालों और विभिन्न समूहों में बाहर से आई और स्थानीय मूल निवासियों की जीवन धारा में घुल-मिल कर एक हो गई[2]। परिणाम स्वरुप आज यह कहना कठिन ही नहीं अपितु असंभव सा भी लगता है कि वास्तव में लाहुल के मूल निवासियों की पहचान क्या है? और इनकी संस्कृति और सभ्यता का स्वरुप क्या था? इस समय यहां पर संस्कृति के नाम पर जो कुछ भी उपलब्ध होता है, वे सभी पूर्णतयः बौद्ध और आर्य संस्कृत का समिश्रित रूप है जो भिन्न-भिन्न कालों और भिन्न-भिन्न दिशाओं से यहां पहुंचे धर्म-दूतों और धर्म प्रचारकों की प्रत्यक्ष देन है। वस्तुतः आदिवासी भी मूल रूप से अनादिवासी ही होते हैं। ये लोग हजारों वर्ष पूर्व किन्ही कारणों की वजह से अपने निवास स्थान से दूर जंगलों और दुर्गम घाटियों में जाकर रहने लगे थे। इस प्रकार उनके निवास तक सामान्य जनता सुगमता से पहुंच नहीं पाती थी परिणामतः

ये लोग प्रगतिशील संसार से अलग-थलग होकर अपनी पुरा सभ्यता और संस्कृति में बन्धे रह जाते हैं । ज्ञान का आलोक इन तक पहुंच नहीं पाता है । इस प्रकार अतीत के साथ अधिक जुड़े रहने के कारण, इनकी जीवन दृष्टि उन्हें सभ्य समाज से सर्वथा पृथक कर देती है । फलतः यह लोग नैसर्गिक बातों पर अधिक विश्वास करने लग जाते हैं । लाहुल के ज्ञात इतिहास से ऐसा प्रतीत होता है कि पुराकाल में यहां पर एक समुन्नत जनजाति निवास करती थी । यह पशुपाल के साथ-साथ आंशिक रूप से खेती-बाड़ी का काम भी करती थी परन्तु उसका कृषि-कर्म इतना आदिम था कि इस से उसको लाभ की जगह हानि ही अधिक होती थी । धीरे-धीरे यहां पर आस-पड़ोस के लोग भी पहुंचने लगे । ये लोग विशेषकर अपने मवेशियों के लिए चरागह खोजने के लिए आते थे । इनमें से कितने ही लोग यहां के प्राकृतिक वैभव को देखकर स्थायी रूप से रह जाते थे । इस प्रकार उत्तर और पूर्व की ओर से भोट और मंगोल प्रजाति के लोग आए तो दक्षिण और पश्चिम की ओर से आर्य जाति के लोग। कालान्तर में हिमालय का यह क्षेत्र नाना प्रजातियों का निवास स्थान सा बन कर रह गया और यहां के मूल निवासी धीरे-धीरे लुप्त हो गए । आज यहां पर उन आदिवासियों के अवशेष के रूप में जो कुछ जीवित बचा है वह है भूत-प्रेतों के प्रति अत्यधिक विश्वास और उसी से प्रेरित होकर बलि-प्रथा का बीभत्स रूप बलि प्रथा तो यहां के जीवन का एक नासूर सा बनकर रह गई है । यहां तक कि अपने को तथागत के अनुयायी कहने वालों में भी यह प्रथा आंशिक रूप से विद्यमान है । ऐसा लगता है कि भगवान शाक्यमुनि की वह पंक्ति, जिसमें उन्होंने कहा है कि :

(धम्मपद 15/19)

न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति

जो प्राणियों की हिंसा करता है, वह आर्य नहीं होता । धम्मपद की यह उक्ति यहां की जीवन पद्धति को बदलने में सहायक सिद्ध नहीं हुई । तथापि यहां की जनजाति बौद्ध-धर्म की देन कदापि भूल नहीं सकती । यदि इन काननवासियों में बौद्ध धर्म का प्रचार समय पर नहीं हुआ होता तो आज यह बर्बर जाति असम के नागाओं की भांति राष्ट्र के लिए एक सिर दर्द बन गई होती । ईसाई मिशनरियों ने 1853 में लाहुल में पहुंच कर ईसाइत फैलाने की कोशिश की थी परन्तु यहां के तत्कालीन प्रशासक ठाकुर परिवार के नेतृत्व में बौद्ध समुदाय के घोर विरोध के कारण ये लोग 1940 में अपने बोरी-बिस्तर बांध कर यहां से वापस चले गए ।

यह ज्ञात है कि छटी शताब्दी तक सम्पूर्ण उत्तर भारत में तंत्रयान बौद्ध धर्म का प्रचार हो चुका था परन्तु लाहुल में तंत्रयान का प्रचार इस ओर से नहीं अपितु तिब्बत की ओर से हुआ था। यह यही है कि सातवीं शती में यहां सिद्धाचार्य गुरु घण्टा-पाद जैसे तांत्रिक आचार्य इस घाटी में पहुंच कर त्रिलोकनाथ के एक निर्जन वन में साधना कर रहे थे । यह भी कहा जाता है कि आठवीं शताब्दी में तंत्राचार्य पद्म संभव ने तिब्बत जाने से पूर्व लाहुल की यात्रा की थी परन्तु उनकी इस यात्रा के सम्बन्ध में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता । जो कुछ उपलब्ध है वह केवल

लोकोक्तियां और जनश्रुतियों पर आधारित है। यदि आचार्य पद्म संभव ने लाहुल की यात्रा की भी थी तो, यह निश्चित है कि उन्होंने यहां पर धर्म प्रचार का काम नहीं किया, क्योंकि तंत्रयान के पात्र के लिए निष्ठावान पात्र और पूर्वव्याकृत पुरुष की आवश्यकता होती है। लाहुल के संदर्भ में ऐसी बातों का उल्लेख किसी बौद्ध शास्त्र में नहीं मिलता।

इस से पूर्व लाहुल घाटी में श्रमण-धर्म का व्यापक प्रचार हो चुका था और लोग व्यवस्थित रूप से मठ-मन्दिर आदि निर्माण करने में लग गए थे। इस के लिए श्रीनालन्दा और विक्रमशिला जैसे महान शिक्षा संस्थानों से धर्म प्रचारक यहां पहुंचते थे। इसी से आकर्षित हो कर प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यून सांग (सन् 629-645) ने भी लाहुल की यात्रा की थी[3]। इस से हम यह सहज अनुमान लगा सकते हैं कि उस समय लाहुल की यह सुरम्य घाटी बौद्ध धर्म का एक महान केन्द्र बन चुका था।

आज लाहुल में श्रमण-धर्म तो नहीं अपितु महायान बौद्ध धर्म का प्रचार है। आचार्य पद्म संभव ने स्वयं इस घाटी में भले ही तंत्रयान का प्रचार न किया हो परन्तु एक समय यह उपत्यका उन्हीं द्वारा तिब्बत में प्रचारित ञिङ-म-पा (प्राचीनक) बौद्ध धर्म का गढ़ सा बन गया था। इस घटना क्रम को समझने के लिए हमें इस की पृष्ठभूमि की भी किंचित चर्चा करनी पड़ेगी। ऐसा कहा जाता है कि तिब्बत में ञिङ-म-पा वालों का प्रचार जब प्रकर्ष पर पहुंच रहा था, तब उस समय इस निकाय का केन्द्र समझे जाने वाले प्रदेश 'चङ' पर मंगोल सरदार गु-श्री-रवान् (ई० सन् 1642) ने आक्रमण कर इसे तहस-नहस कर दिया[4]। फलतः यहां के ञिङ-म-पा अनुयायी अपनी जान बचाने के लिए हिमालय की इन तराईयों में शरण लेने लगे। धीरे-धीरे इस निकाय के धर्माचार्य इन तराईयों में अपने मत का प्रचार करने लगे। इस प्रकार लाहुल में तिब्बत की ओर से बौद्ध धर्म की आमद का यह प्रथम चरण था। तत्पश्चात् इस की निरन्तरता सदा बनी रही। बुद्ध ने कहा था कि संसार परिवर्तन शील है। कोई भी धर्म नित्य और शाश्वत नहीं होता। आज लाहुल में ञिङ-म-पा का नहीं अपितु क-ग्युद-पा निकास की 12 शाखाओं में से ल्हो-ड्ग और जुङ-ड्ग-क-ग्युद-पा का वर्चस्व है। लामा मर पा (1012 ई0) भोट देश के एक महत्व कांक्षी व्यक्ति थे। तंत्रविद्या पर इन की बचपन से ही आस्था थी। अत: इन्होंने इस विद्या को प्राप्त करने के लिए भारत वर्ष की तीन बार यात्रा की थी। महा सिद्ध-न-रो-पा आदि एक सौ आठ सिद्ध पुरुषों और योगी-योगिनियों से तंत्र विद्या ग्रहण कर वह तिब्बत लौट गए। स्वदेश लौट कर इन्होंने सिद्धों की परम्परा वाले क-ग्युद-पा निकाय का प्रचार किया तो यह निकाय शीघ्र लोक प्रिय होकर दिन दुगनी और रात चौगुनी उन्नति करने लगा। काल-क्रम से इस के मठ-मन्दिर भी स्थापित होने लगे। 'चङ' प्रान्त के-र-लुङ और तग लुङ नामक मठ इस निकाय के तत्कालीन प्रमुख केन्द्रों में गिने जाते थे। यहां से इस की विभिन्न शाखाएं विकसित हुई और इन के शिष्य प्रशिष्यों में आगे चल कर चार मुख्य और आठ उपनिकाय निकले। ईस्वी सन् 1616 में र-लुङ-मठ का एक भिक्षु जो बाद में जब्स-

टङ-नवांग-नम-ग्यल के नाम से विख्यात हुए, अपने निकाय के प्रचारार्थ भूटान पहुंचे। आज के भूटान का राजधर्म इसी कर्मठ संत द्वारा प्रचारित धर्म है। लामा मर-पा स्वयं भी अपने द्वारा सम्बंधित निकाय के प्रचार के लिए लद्दाख के जंस्कर क्षेत्र पहुंचे और वहां पर उन्होंने एक बिहार की भी स्थापना की, जो आज तोङ-दे गोन्पा के नाम से जाना जाता है।

लामा मर-पा जंस्कर क्षेत्र को अपना अनुयायी बना कर तिब्बत लौट गए। धीरे-धीरे इस निकाय का इस क्षेत्र में इतना प्रभाव पड़ा कि कई राजघरानों की पुत्र-पुत्रियां गृहत्याग कर इस में दीक्षित हो गईं। प्रसिद्ध लामा दे-व-ग्य-छो जिन की वर्तमान लाहुल की गहार वादी में बुद्ध के समान पूजा की जाती है, जंस्कर के प-दुम राजकुल से प्रव्रजित एक सिद्ध थे। इन्होंने अपने निकाय की शिक्षा भूटान में जाकर प्राप्त की थी और प्रशिक्षित होकर धर्म प्रचार में लग गए थे। उस समय धर्म प्रचारकों के अभाव में लाहुल छट-पटा सा रहा था, क्योंकि नालन्दा आदि शिक्षा संस्थानों के ध्वस्त हो जाने से यहां पर धर्म प्रचारकों का पहुंचना कभी से बन्द हो चुका था। इधर मंगोल सरदार गु-श्री-खान् की बर्बर सेना ने भी ञिङ-म-पा के केन्द्रों का अस्तित्व समाप्त कर दिया था। यद्यपि इन के कुछ आचार्य अपने निकाय के प्रचार में लगे हुए थे परन्तु एक सशक्त संगठन के अभाव में, उन्हें अधिक सफलता नहीं मिल रही थी। लामा दे-व-ग्य-छो को अपने निकाय के प्रचार के लिए लाहुल में मैदान साफ मिला, वे यहां पहुंचे और अपने निकाय का प्रचार कर ल्हो-डुग-क-ग्युद-पा की नींव दृढ़ कर दी। कहा जाता है कि उन्होंने अपने इस क्षण भंगुर शरीर को भी लाहुल में ही छोड़ा था।

दे-व-ग्य-छो के ही समकालीन लामा तग-छङ प्रथम (जन्म 1532 ई०) के अनुयायियों ने लाहुल के उत्तरी क्षेत्र 'तोद' प्रदेश में क-ग्युद पा-निकाय की जुङ-डुग शाखा का प्रचार कर गे-मुर गोन्पा की स्थापना की थी। यद्यपि इस का श्री गणेश लामा तग-छङ ने स्वयं खङ-सर राजघराने की एक कन्या को दीक्षा दे कर किया था। उपर्युक्त कथन से मेरा यह आशय नहीं है कि इस समय लाहुल में ञिङ-म-पा बौद्ध धर्म का अब कोई अस्तित्व नहीं रह गया। वास्तविकता यह है कि यहां आज भी ञिङ-म-पा निकाय का वर्चस्व वैसा ही है, जैसा कभी पूर्वकाल में था। केवल अनुयायियों के अनुपातन से आज लाहुल अपने को क-ग्युद निकाय का अनुचर मानता है। भला आचार्य पद्म संभव जैसे महागुरुओं के उपदेशों की कोई उपेक्षा कर सकता है? यह सही है कि लाहुल के वर्तमान 17 छोटे-बड़े मन्दिरों में से ञिङ-म-पा निकाय के नाम से कोई भी बिहार स्थापित नहीं हैं। इसी प्रकार तिब्बत के चार प्रमुख निकायों में से स-क्य-पा और गे-लुग्स-पा वालों का भी यहां कोई मठ मन्दिर निर्मित नहीं हुआ है। तथापि आचार्य चौङ-ख-पा[5] (1355-1417) के शिष्यों में प्रमुख तोद-शेस-ख-जङ-पो जो लद्दाख के ठिग-से गांव से प्रव्रजित एक भिक्षु थे, वे स्वयं अथवा उन के शिष्य जब लाहुल में विनय प्रधान गे-लुड्स निकाय के प्रचारार्थ पहुंचे तो उस निकाय की महता से प्रभावित हो कर तत्कालीन कुल्लू नरेश बहादुर सिंह ने भागा वादी के कुछ उपरीक्षेत्र, जिस में छोस-कु-ची गोन्पा से लेकर जिस-पा गांव के आस-पास का सारा इलाका

शामिल था, धर्मार्थ उन्हें सौंप दिया था। परन्तु यह विडम्बना है कि आज छोस-कू-ची गोन्पा का आकार-प्रकार भी गे-लुग्स-पा का नहीं अपितु क-ग्युद-पा का लगता है। यह सही है कि प्रारम्भ में यह प्राचीन मन्दिर क-ग्युद-पा वालों का ही पूजा स्थल था।

धर्म चाहे किसी का भी क्यों न हो, वह भौतिक और आध्यत्मिक दोनों पक्षों का परिष्कार करने में सहायक होता है। लाहुली जनजाति के जीवन को सुधारने में जितनी देन बौद्ध धर्म की है, उतना योगदान हिन्दू धर्म का भी रहा है। आज लाहुल की पटनवादी में बौद्धों की अपेक्षा हिन्दू धर्म के मानने वाले अधिक हैं। 17 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक इस क्षेत्र में बौद्धों का अनुपात अधिक था। यही कारण है कि आज भी यहां के हिन्दू परिवारों के अनुष्ठानों और पूजा-पाठ की पद्धतियों में बौद्धों के तत्व अधिक भासमान होते हैं। इस प्रकार संभोट-भारतीय संस्कृति का स्वरूप जैसा यहां पर विद्यमान है। वैसा प्रतिरूप अन्यत्र सुलभ नहीं है। यहां के जीवन के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि कभी ये लोग अपने-अपने क्षेत्र के धर्म और संस्कृति को लेकर यहां आए थे, परन्तु बाह्य जगत के सम्पर्क के अभाव में ये अपने धर्म और संस्कृति को स्थिर नहीं रख सके। परिणामतः ये लोग परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को बदलते रहे। आज लाहुल की सामाजिक व्यवस्था में एकता के स्वरूप का यही रहस्य है। दूसरी बात यह कि यहां की भौगोलिक स्थिति भी ऐसी है जो लोगों को संगठित रूप से रहने का पाठ पढ़ाती है, क्योंकि सर्दियों के 5/6 महीने जब यह वादी शेष दुनियां से कट जाती है तब सुख-दुःख में सह भागी के रूप में अपने आस-पड़ोस के लोगों को छोड़ कर दूसरा कोई नहीं होता। अतः लाहुल की संस्कृति के वर्तमान स्वरूप को ठीक-ठीक समझने के लिए, इन प्रजातियों की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा की पृष्ठभूमि को टटोलना पड़ेगा, जिन्होंने विभिन्न कालों और विभिन्न दिशाओं से यहां आकर इस वादी को अपने जीवन की क्रीड़ा-स्थली के रूप में अपना लिया था।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 चे० ए० मिलिन और जे० पी० गिलिन, सांस्कृतिक समाज-शास्त्र, पृष्ठ 282

2 प्रो० डी० डी० शर्मा, लाहुल की धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठ भूमि, निबन्ध पृष्ठ 4

3 ह्युन सांग, भारत भ्रमण वृत्तान्त, अनुवादक, स्मोल बलि, द्वितीय भाग पृष्ठ 210

4 चे-पोन डब्ल्यू० डी० ज-गब-पा, तिब्बत-एक राजनैतिक इतिहास पृष्ठ 110-111

5 खस-डुब-जे, आचार्य चोङ-ख-पा की जीवनी, भूमिका पृष्ठ प्रथम।

मध्य एशिया
अध्ययन विभाग,
पंजाब विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ़-14,

स्व० लाल चन्द प्रार्थी के व्यक्तित्व तथा चिन्तन के कुछ अछूते प्रसंग

— बिहारीलाल बहार

श्री लाल चन्द प्रार्थी चांद कुल्लवी के जीवन और व्यक्तित्व के बारे में कुछ वर्षों में बहुत कुछ कहा और लिखा जा चुका है। परन्तु प्रार्थी जी के जीवन का आयाम इतना विशाल और व्यापक रहा है कि बहुत कुछ लिखने के बाद भी उतना ही अधिक कहने और लिखने की गुंजाइश बनी रहती है। कुछ अछूते प्रसंग लिखने के प्रयास में अभी भी अनेक प्रसंग छूट सकते हैं। किसी के जीवन का हर पक्ष एक ही लेख में समाविष्ट हो ऐसा सम्भव भी नहीं है। हर व्यक्ति ने उन्हें और उनके काम को अपने नज़रीए से देखा है अतः पुस्तकें लिखने पर भी बहुत कुछ भविष्य के लिए सापेक्ष बना रह सकता है।

अछूते संदर्भ अलग से प्रस्तुत करने से पूर्व ठीक होगा कि संक्षेप में उनकी जिंदगी के हालात को जिनमें कुछ अछूती बातें भी शामिल हैं एक बार दोहरा दिया जाए।

श्री लाल चन्द प्रार्थी वर्ष 1916 में नए संवत के दिन कुल्लू उप मण्डल के नगर गांव में पैदा हुए, उनके पूर्वज काश्मीरी पंडित थे जो चौहदवीं-पन्द्रहवीं सदी ई० में मुसलमानी आंतक से पीछा छुड़ाकर चम्बा, लाहौल के सिंधवाड़ी गांव में आकर रहने लगे। इस गांव में इस परिवार के लोग आज भी रहते हैं। 17वीं सदी में उनकी एक शाखा कुल्लू की तरफ आई और नगर गांव जो उन दिनों कुल्लू के राजाओं की राजधानी थी, में बस गई।

लालचन्द बचपन से ही ज़हीन थे और अपनी पढ़ाई में गहरी दिलचस्पी लेते थे। आपने प्राईमरी तक अपने गांव में ही तालीम हासिल की और मैट्रिक के लिए कुल्लू हाई स्कूल में दाखला लिया। मैट्रिक उन्होंने 1931 में पास किया। अपनी तालीम के दौरान प्रार्थी जी लगातार वजीफा हासिल करते रहे। मैट्रिक पास करने के बाद वे कुछ महीनों के लिए जम्मू चले गए जहां आपने अपने भाई श्री राम चन्द शास्त्री से संस्कृत पढ़ी। वहीं पर आपने पंडित देवराज जी शास्त्री जो महाराजा हरिसिंह जम्मू तथा काश्मीर के भी गुरु थे, के हाथों से यज्ञोपवीत पहनकर उन्हें गुरु धारण किया। जम्मू से आकर आपने लाहौर सनातन धर्म कालेज में दाखला लिया। उस वक्त आपका विचार बी० ए० करने के बाद कानून पढ़ने का था मगर यह ख्याल बहुत देर तक कायम नहीं रहा और कुछ ही महीनों के बाद आप प्रेमगिरि सनातन धर्म आयुर्वेद कालेज में आ गए और

तीन साल तक आचार्य पंडित दुर्गादत्त जी शर्मा, पंडित हरिदत्त जी शास्त्री, पंडित शिव शर्मा जी, पं० नरेन्द्रदत्त शर्मा जी जैसे आचार्यों से आयुर्वेद की तालीम ली। आपने इस कालेज से वैद्यकविराज की डिग्री सम्मान सहित प्राप्त की। उसवक्त आपकी उम्र सिर्फ 18 साल की थी। आपको छोटी उम्र से ही संगीत, कविता और नाटक आदि ललित कलाओं से दिलचस्पी थी तथा समाज सेवा और राजनीति से भी गहरा लगाव था। क्रांतिकारी पार्टियों से भी आपका सम्बन्ध था जो आगे चलकर ज्यादा जोर पकड़ता गया और आपने उस रास्ते पर चलने का पक्का इरादा कर लिया। इस छोटी उम्र में ही आप लाहौर से निकलने वाले कांगड़ा समाचार नामी उर्दू महावारी रसाला के एडीटर बने। यह रसाला चलाने वाली सभा आपसी फूट की वजह से टूट गई और आप लाहौर से कुल्लू आ गए। यहां आकर आपने लोगों की सेवा करने की गरज से हिमालय सेवा संघ नाम की एक संस्था की बुनियाद डाली, जिसके कार्य क्षेत्र में सबसे पहले साक्षरता का प्रचार था। आपने कुल्लू के कई गांवों में इस मतलब के लिए रात्रि पाठशालाऐं खोली। वक्त और ज़रुरत के अनुसार हिन्दी प्राईमर खुद लिखे और हजारों की तादाद में छपवाये। बाल रामायण भी खुद लिखकर छपवाई और बंटवाई। यह प्रोग्राम कुछ साल चलता रहा और आप अपनी बेलाग सेवा की वजह से लोगों के मन जीतने में सफल हुए। इसी बीच उस वक्त की सरकार ने आपके इस अच्छे काम से प्रभावित होकर आपको पंचायत ऑफिसर चुन लिया। सन् 1938 से 1942 तक आप जिला कांगड़ा की कई जगहों पर इस औहदे पर काम करते रहे। आयुर्वेद का मुताला और जड़ी बूटियों की खोज इन दिनों भी जारी रही और चलते फिरते ज़रुरत पड़ने पर बीमारों को मशवरा देते और इलाज भी करते थे। 1942 में जो भारत छोड़ो आंदोलन का वक्त था आपने नौकरी छोड़ दी और खुफिया तौर पर आंदोलन की मदद में काम करते रहे और इसी दौरान आपने धर्मशाला के एक बड़े चाय बागान में जनरल मैनेजर की नौकरी कर ली जहां आप तकरीबन तीन साल तक रहे। इसके बाद वर्ष 1946 के चुनाव आ गए और आप सियासत के मैदान में कूद पड़े। जिला कांगड़ा की कांग्रेस कमेटी में आप ऑरगेनाईज़र तो थे ही अब आपके जिम्मे कुल्लू, लाहुल स्पिति का इलाका दे दिया गया जहां आपने कांग्रेस का काम शुरु किया और लगभग 20 साल तक कुल्लू कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। इस समय में ही आप दो बार पंजाब विधानसभा के लिए चुनाव लड़कर कामयाब हुए। सियासत और समाज सेवा साथ-साथ होती रही। बीच-बीच में आयुर्वेदिक अभ्यास भी जारी रहा और कई पत्र-पत्रिकाऐं भी निकाली। सन् 1966 में विशाल हिमाचल प्रदेश की स्थापना हुई और कुल्लू क्षेत्र उसमें आ गया। 7 जनवरी, 1967 को हिमाचल सरकार में पहली बार कैबिनेट मन्त्री के तौर पर दाखिल हुए। इसीसाल फरवरी में आम चुनाव हुए और उसमें कामयाब होने पर आपको फिर कैबिनेट मन्त्री का औहदा दिया गया। सन 1972 के आम चुनाव में एक बार फिर जनता ने आपको मान्यता और प्यार दिया और इस दफा भी आप कैबिनेट मन्त्री बने।

यह तो एक मानी हुई असलियत है कि प्रार्थी जी एक बहुमुखी व्यक्ति थे। वे जुदा-जुदा वक्तों में समाज सेवक, वैद्य, पत्रकार, सरकारी अफसर, कांग्रेसी नेता, विधायक, वज़ीर, शायर, कवि और साहित्यकार थे। किसी एक समय में भी इनमें से कई-कई शख्सीयतों के मालिक थे। इस बारे में उनकी बाबत पहला प्रसंग उनकी आयुर्वेदिक प्रैक्टिस के सम्बन्ध में देना उपयुक्त होगा,

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि सन् 1934 में प्रार्थी जी ने वैद्यकविराज की डिग्री हासिल की। उन्होंने एक जगह लिखा है कि उन्होंने 8 साल तक आयुर्वेदक प्रैक्टिस की। मगर यह कहीं साफ नहीं है कि यह समय कौन-कौन सा था। पहला समय तो सन् 1934 से सन् 1938 तक मालूम होता है जब उन्होंने लगातार प्रैक्टिस की। उसके बाद यह प्रैक्टिस 1957 से 1962 के समय में बीच-बीच में दूसरे कामों के दरमियान की हुई मालूम होती है। उनकी पहली प्रैक्टिस के वक्त के नोट मैंने एक कापी में पढ़े और पाया कि प्रैक्टिस नकद के इलावा उधार पर भी चलती थी। आयुर्वेदिक दवाईयां बहुत सस्ती थी। उधार के खातों में ज्यादातर एक, दो, चार, आठ, आने तक के अंक इन्द्राजात थे और कहीं-कहीं एक-दो रुपए तक दस रुपए की रकम का इन्द्राज सिर्फ एक बार था। पुराने रिकार्ड में एक नोट बुक नुस्खों की भी मिली। आयुर्वेदिक आचार्यों के अलावा इस पेशा में उनके एक गुरु और भी थे। उस नोट बुक में पहले सफे पर उर्दू में लिखा है :—

"नुस्कखाजात अताकरदा स्वामी विष्णु भगवान जी"
चरण सेवक लालचन्द वैद कविराज"

नुस्खे तकरीबन सभी बिमारियों पर हैं। यहां नमूने के तौर पर सिर्फ चार लिखे जाते हैं।

बारी का बुखार (मलेरिया)

समउलफार (दो रत्ती), फटकरी, बिरयां (एक माशा), निहायत बारीक पीस कर बुखार होने से तीन घंटा पेश्तर दो तोला शहद में मिलाकर चटायें। प्यास ज्यादा लगे तो मिसरी का शरबत पिलायें।

बवासीर

रसौंत दस तोला, कंथी के दो सेर अर्क में घोल कर छान लो और लोहे की कढ़ाई में पकाओ। जब गोली बनाने के काबिल हो जाए तो उतार कर जंगली बेर के बराबर गोली बना लो। एक गोली हमरा ताजा पानी हर रोज सुबह-शाम। तरीका अर्क निकालने का यह है कि कंथी के पत्तों को पानी में पीस कर छान लेना चाहिए।

कायाकल्प

नीम के पत्ते चार तोला, नीम के फूल चार तोला, नीम के फल चार तोला, नीम की छाल चार तोला, त्रिफला बारह तोला, पिपलामूल चार तोला, नमक स्याह चार तोला, जीरा काश्मीरी चार तोला-शहद से 360 गोलियां बनाएं। हर रोज सुबह एक गोली हमरा बासी पानी इस्तेमाल बिना नागा करें। खटाई न खाये। यह बाल स्याह करता है। रसायन है। कई रोगों को दूर करके कायाकल्प करता है। आजमाईश शर्त।

मुक्कवी (ताकत)

गुल बनक्शा तीन माशा, शुहारे के छिलके तीन माशा, बादाम मुक्कशर एक तोला, एक

सेर दूध में अच्छी तरह उबालकर हर रोज सोते वक्त पीया करें। दायत्री जुकाम, सर दर्द, कब्ज, आम कमजोरी को दूर करता है। नुस्खा मुख्तसर मगर मुफीद है।

बाद की प्रैक्टिस का कोई इन्द्राज नहीं मिला। ऐसा मालूम होता है कि वर्ष 1957 तक उनके पास कोई वक्त था ही नहीं क्योंकि वो सन् 1938 से 1942 तक पंचायत ऑफिसर रहे। 1943 से 1945-46 तक चाय बागान में रहे और तब सियासी जिन्दगी जोरों-शोरों से शुरु हो गई। ऐसा हो सकता है प्रैक्टिस फिर सन् 1957 के बाद जब वे 1962 तक मैम्बर असैम्बली नहीं थे, कुछ अरसा तक की हो।

बहरहाल उन्हें तकरीबन 30 साल बाद आयुर्वेद की सेवा करने का मौका एक बहुत बड़े स्तर पर मिला जब वे हिमाचल में पहले हैल्थ मिनिस्टर और फिर आयुर्वेद मिनिस्टर बने। इस में सोने पर सुहागा यह हुआ कि वे सन् 1974-75 में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन (ऑल इडिया आयुर्वेदिक कांग्रेस) के अध्यक्ष चुने गए। इस काम के लिए उनका दफ्तर दिल्ली में था और वे वहां जाकर इस संस्था का काम निपटाया करते थे। इस महासम्मेलन का 48 वां अधिवेशन 3 फरवरी, 1975 को पांडिचेरी में मुनक्कत् हुआ। जिसमें देश के बड़े-बड़े नेता और सैकड़ों प्रसिद्ध वैद लोग मौजूद थे। उसमें उन्होंने अपना अध्यक्षीय भाषण पढ़ा।

आयुर्वेद भारत की वह अमूल्य निधि है जो अन्य चिकित्सा प्रणालियों की भान्ति केवल एक चिकित्सा शास्त्र मात्र नहीं अपितु जीवन का एक परिपूर्ण विज्ञान है। यही कारण है कि इस शास्त्र में चिकित्सा ज्ञान के साथ-साथ दर्शन का भी सामंजस्यपूर्ण समावेश है। शाश्वत वैज्ञानिक आधार के कारण ही यह शास्त्र घोर कठिनाइयों, राजनैतिक विषमताओं का सामना करता हुआ अपनी सत्ता बनाए रहा है। समय की कठिनाइयों की तनिक भी चिन्ता किए बिना इस विज्ञान के सेवक त्याग तथा श्रद्धा की भावना से जनता की सेवा करते रहे हैं।

यदि हम इस महान् शास्त्र के ऐतिहासिक पक्ष का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होता है कि आयुर्वेद सार्वभौम विज्ञान रहा है तथा देशकाल की परिस्थितियाँ इसे अपनी सीमाओं में बांधने में असमर्थ रही हैं। हमारा सौभाग्य है कि इस महान् विज्ञान की प्रथम अरणिमा भारत के भाल पर प्रखरित हुई तथा यहां से इसका दिव्यालोक देश देशान्तर में प्रसारित हुआ। इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि आयुर्वेद शास्त्र का प्रभाव देश-देशान्तर मिश्र, सुमेरिआ, असीरिया, बेबिलोनिआ आदि चिकित्सा प्रणालियों पर पड़ा। एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली के आदि प्रवर्तक हिपोक्रेटीज भी इस महान् विज्ञान से प्रभावित हुए। विश्वविख्यात तक्षशिला जैसे विद्यालयों में संसार भर के जिज्ञासु आयुर्वेद चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करने आते थे।

जिस काल में अन्य चिकित्साशास्त्र आपने शैशव काल में थे आयुर्वेद अपनी उन्नति के शिखर पर था अन्य चिकित्सा प्रणालियों का दिग्दर्शक था।

कालचक्र से ऐसा समय आया जब विदेशी आक्रमणकारियों के निरन्तर आक्रमण तथा भारतीयता को समूल नष्ट करने के लगातार प्रयत्नों से आयुर्वेद को भी आघात पहुंचा। आयुर्वेदीय साहित्य की अमूल्य निधि को अन्य शास्त्रों के साथ-साथ नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया। अंग्रेजी शासनकाल में भी आयुर्वेद के साथ सौतेली मां का व्यवहार हुआ तथा इस प्रणाली को ऐलोपैथी के प्रचार-प्रसार में मुख्य बाधा समझ कर इसे नष्ट भ्रष्ट करने के भरसक प्रयत्न हुए। इस शास्त्र के दृढ़ वैज्ञानिक आधार होने के कारण ही यह इन विकट परिस्थितियों में अपने अस्तित्व को बनाए रहा। यह सर्वविदित ऐतिहासिक तथ्य है कि जहां ग्रीस, बेबीलोनिआ, मिश्र आदि चिकित्सा प्रणालियां अपने ही उद्‌भव स्थान पर सदा के लिए लुप्त हो गई वहां आयुर्वेद अपना अस्तित्व बनाए रहा। यह आयुर्वेद आपने आप में एक महान् शास्त्र है जिसे यह श्रेय प्राप्त है कि अपने साथ-साथ इसने एक अन्य चिकित्सा प्रणाली को भी जीवित रखा। जबकि दमिश्क और बगदाद में जहां यूनानी चिकित्सा का जन्म हुआ वहां इस प्रणाली का नाम निशान भी शेष नहीं वहां भारत में अपने सम्पर्क से आयुर्वेद ने इसे आज भी जीवित रखा है।

अंग्रेजों के शासन काल में भी इस चिकित्सा प्रणाली को कुछ भी संरक्षण प्राप्त नहीं हुआ। आयुर्वेद के कुछ विद्वानों तथा हितैषियों ने सन् 1907 में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थापना की। इस संस्था का महान् उद्‌देश्य ब्रिटिश साम्राज्य के विषम प्रहारों तथा असहयोग नीति से आयुर्वेद की रक्षा, आयुर्वेद शिक्षा-दिक्षा की रक्षा तथा आयुर्वेद प्रचार करना था। इस संस्था के भरसक प्रयत्नों से एक नई जागृति उत्पन्न हुई उस समय जब चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार था, आशा की एक नई रेखा प्रखरित हुई, तत्कालीन राज्य सरकारों का ध्यान इस ओर आर्कषित हुआ एवं कई देशी राज्यों ने आयुर्वेदिक महाविद्यालयों तथा औषधालयों की स्थापना की।

इस प्रकार आयुर्वेद के प्रचार प्रसार के लिए प्रयत्न आरम्भ हुए। जहां महामना मदन मोहन मालवीय, महाराज श्रीराम वर्मा, श्री शंकरदास जी पंदे, कविराज गणनाथ सेन, पंडित राम प्रसाद जी, श्री लक्ष्मीराम स्वामी, श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, डॉ० लक्ष्मी पति तथा यादव जी आचार्य जैसे महान विद्धानों ने इस संस्था की स्थापना की वहां पंडित शिव शर्मा जी जैसे महापुरुषों ने इसे आगे विकसित किया तथा देश में ही नहीं विदेशों में भी इस महान विज्ञान की यश पताका प्रसारित की।

शनै : शनै : आयुर्वेद पुन : प्रगति पथ पर अग्रसर हुआ। भोर तथा चोपड़ा कमेटी जैसी समितियों की स्थापना हुई जिन्होंने एक मत से यह स्वीकार किया कि भारत की दो तिहाई से भी अधिक जनता आज भी आयुर्वेदीय चिकित्सा से लाभ उठाती है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् उड़प्पा तथा व्यास समितियों की स्थापना हुई। इनकी सिफारिशों के आधार पर शिक्षा तथा अनुसन्धान के क्षेत्र में कुछ क्रियात्मक पग उठाए गए।

लोकसभा तथा प्रांतीय विधान सभाओं का ध्यान आयुर्वेद की प्रगति तथा पुनरुत्थान की ओर आकर्षित हुआ। लोकसभा में हमारे महान नेताओं में मूर्धन्य पंडित शिव शर्मा जी तथा अनन्त त्रिपाठी शर्मा जैसे महारथियों ने आयुर्वेद शिक्षा एवं चिकित्सा के स्तरीकरण, विकास और प्रचार के लिए अभियान आरम्भ किया। आपके ही सतत प्रयत्नों, हमारी प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के आर्शीवाद तथा तत्कालीन केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री श्री के० के० शाह के नेतृत्व में 1969 में "भारतीय चिकित्सा पद्धति एवं होम्योपैथी की केन्द्रीय अनुसंधान परिषद्" तथा 1971 में भारतीय चिकित्सा की केन्द्रीय परिषद् की स्थापना हुई। हमारी केन्द्रीय चिकित्सा परिषद के अध्यक्ष श्री पंडित शिव शर्मा जी के दिग्दर्शन तथा केन्द्रीय आयुर्वेद सलाहकार डॉ० पी० एन० वी० कुरप के प्रबन्ध में हमने शिक्षा अनुसन्धान तथा चिकित्सा के क्षेत्र में भी प्रभावशाली प्रगति की है।

केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय के अधीन आयुर्वेदिक विभाग ने प्रशंसात्मक प्रगति की है। केन्द्रीय अनुसन्धान परिषद् तथा केन्द्रीय चिकित्सा परिषद् की स्थापना के साथ-साथ गत वर्षों की तरह स्नातकोत्तर शिक्षण तथा अनुसंधान विभागों की स्थापना देश के विभिन्न आयुर्वेद महाविद्यालयों में की गई।

केन्द्रीय अनुसंधान परिषद् के अधीन देश में स्वास्थ्य संरक्षण हेतु पथ्यापथ्य, रोग संक्रमण, घरेलू औषध चिकित्सा, वनौषध पहचान एवं संकलन, औषधनिर्माण स्तरीकरण, साहित्यिक, औषध निर्माण एवं कार्यचिकित्सा सम्बन्धी अनुसंधान तथा परिवार नियोजन आदि विषयों में विभिन्न स्थानों पर गम्भीर अध्ययन चल रहे हैं।

केन्द्रीय चिकित्सा परिषद् ने भी आयुर्वेद शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। स्नातक स्तर की शिक्षा हेतु देश भर के लिए एक पाठ्यक्रम बन चुका है तथा बहुत से महा विद्यालयों ने इसे अपना भी लिया है। स्नातकोत्तर शिक्षण के पाठ्यक्रम की रूप रेखा तैयार की जा चुकी है। आशा है इसे भी शिक्षण संस्थान शीघ्र ही अपना लेंगे। चिकित्सकों के केन्द्रीय पंजीकरण आदि उदेश्यों के नियमोपनियम भी बन चुके हैं।

यह तो हुई केन्द्रीय स्तर पर आयुर्वेद विकास के लिए किए जा रहे प्रयत्नों की एक संक्षिप्त झलक। प्राँतीय स्तर पर भी कुछ प्रदेशों द्वारा सराहनीय कार्य किए जा रहे हैं। राजस्थान तथा उत्तर प्रदेश में स्वतन्त्र आयुर्वेद विभाग विद्यमान हैं। कुछ ही समय हुआ हिमाचल प्रदेश में भी पृथक आयुर्वेद विभाग की स्थापना हो चुकी है। हिमाचल प्रदेश के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री स्वर्गीय डॉ० यशवंत सिंह परमार तो धन्यवाद के लिए विशेष पात्र हैं जिन्होंने आयुर्वेद के समुचित विकास के लिए मंत्री स्तर पर पृथक आयुर्वेद मन्त्री का स्थान बनाया है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह तो स्पष्ट है कि प्रगति की दिशा में हमने कुछ पग तो उठाए हैं

परन्तु अभी बहुत कुछ करना बाकी है जिससे इस विज्ञान का विकास तथा प्रसार भली भांति हो पाए। समय आ गया है कि जब उद्देश्य प्राप्ति के लिए हमें कटिबद्ध होकर निरन्तर प्रयत्न करने होंगे।

अन्त में मैं भाईयों को याद दिलाना चाहता हूं कि संसार की प्राचीनतम तथा सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा प्रणाली "आयुर्वेद" के हम उत्तराधिकारी हैं, स्वार्थ भाव त्याग कर हम लोगों ने इस के विकास तथा प्रचार के लिए और अधिक सन्नद्ध होना है। हमने इसके उत्थान के लिए प्रण करना है। यदि आज के इस दुःख संतप्त संसार को सुख तथा राहत मिल सकती है तो केवल आयुर्वेद द्वारा ही।

आयुर्वेद का भविष्य अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के भावी कार्यकलाप तथा नीतिओं पर ही निर्भर करता है। जिस प्रकार भूतकाल का विकट परिस्थितियों में इसे जीवित रखने का सफल प्रयास आपने किया है उसी प्रकार भविष्य में इसकी प्रगति तथा विकास का
उत्तरदायित्व भी आप पर ही है। आज विदेश का वैज्ञानिक भी इस महान शास्त्र की ओर आकर्षित हुआ है। यह हमारे लिए और भी अधिक उत्साह तथा प्रेरणा जनक होना चाहिए।

आज के समाज मे आवश्यकता इस बात की है कि हम आयुर्वेद को इतना विकसित करें कि सार्वभौम आवश्यकताओं को प्रेरित करता हुआ संपूर्ण संसार के लिए लाभप्रद सिद्ध हो। आयुर्वेद महासम्मेलन द्वारा भारत के वैद्य समाज में यह संधि है कि वे इसे संसार की सर्वोत्कृष्ट तथा सबसे अधिक प्रभावशाली चिकित्सा प्रणाली सिद्ध कर सकें।

वे अपने जीवन के अंत तक हिमाचल आयुर्वेदिक सम्मेलन के अध्यक्ष रहे। वर्ष 1978 में जब वे मन्त्री नहीं थे तो उनकी कोशिशों से हिमाचल में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का अधिवेशन हुआ। यह प्रार्थी जी की शख्सयित के एक बेहतरीन पहलू का प्रमाण है कि उस वक्त जनता सरकार के होते हुए भी उनके अनुरोध पर सरकार ने इस सम्मेलन की सफलता के लिए पूर्ण सहयोग दिया।

यह अजीब इत्तफाक है कि खुद आयुर्वेद के चिकित्सक होते हुए और इस पैथी के विशेषज्ञ से घिरा रहने के बावजूद उनकी बीमारियों का इलाज हमेशा ऐलोपैथी के जरिए हुआ। उस वक्त के पी०जी०आई चंडीगढ़ के डायरैक्टर डॉ० चौटानी उनके मुख्य चिकित्सकों में से थे। मगर आयुर्वेद ने एक मोज्ज़ा उनके परिवार में किया, जिससे उनकी आस्था इस तरह के ईलाज में कायम रही। उनकी बहु को सख्त सरदर्द रहने लगी थी। उनका ईलाज गांव और जिला के अस्पताल के डाक्टरों ने किया मगर फायदा न हुआ। जब शिमला में भी ईलाज से बीमारी घटने के बजाय बढ़ गई तो वे बहु को दिल्ली ले गए। वहां एक बहुत बड़े अस्पताल में किस्म-किस्म के टैस्ट हुए और आखिर डाक्टरों ने फैसला दिया कि बीमार के सिर में रसौली है और ऑपरेशन जरूरी है जोकि बैंलोर में होगा। वहां जाने की तैयारी शुरू हो गई। प्रार्थी जी को ख्याल आया कि सिर के ऑपरेशन का मामला है क्यों न किसी अच्छे आयुर्वेदिक के विशेषज्ञ को भी दिखा लिया जाए। उस वक्त मूलचन्द खैराती राम अस्पताल के डायरैक्टर पंडित हरिदत्त शास्त्री थे, जो

किसी वक्त लाहौर में प्रार्थी जी के कालेज के प्रिंसिपल रह चुके थे। उन्हें बुलाया गया, उन्होंने बगैर आधुनिक यंत्रों के बीमारी का निदान नब्ज, आंखें, जुबान तथा दूसरे बाहरी लक्षण देखकर कर दिया। उन्होंने बीमारी का नाम अनन्त वात लिखा और कहा कि मरीज़ा को देसी घी में केसर मिलाकर नसवार दो और एक सौ बार शुद्ध किया हुआ तेल "कशीर-बला तेलम" जो दक्षिण की एक फार्मेसी का तैयार किया हुआ था, सिर पर कई बार मलो। साथ में उन्होंने नौ पुड़िया दवाई तीन दिन के लिए दी। यह ईलाज करने से तीन दिन में ही चालीस प्रतिशत फर्क पड़ गया। भूख खुल गई और उसमें उम्मीद और जीवन का उत्साह बढ़ गया। वैद जी ने तब नौ दिन के लिए 27 पुड़ियां दीं, जिनके खाने के बाद मरीज़ा शिमला वापिस जाने के काबिल हो गई। उन्होंने नौ दिन के लिए और दवाई देकर प्रार्थी जी से कहा कि यह दवाई अब शिमला जाकर खिलाइये। इसके बाद दवाई की जरूरत नहीं है। प्रार्थी जी की बहु बिल्कुल ठीक हो गई और पिछले बीस साल में उसे इस किस्म की कोई तकलीफ नहीं है। प्रार्थी जी यह घटना आयुर्वेद की महानता के तौर पर सुनाया करते थे और कहते थे कि आयुर्वेद में हर बीमारी का ईलाज मौजूद है मगर इसे फिर से अपनी पुरानी बुलन्दी पर लाने की जरूरत है।

दूसरा प्रसंग जिस पर अभी तक तफसील से नहीं लिखा गया वह उनकी पत्रकारिता का है। यह दुखः का विषय है कि उनकी पत्रिकाओं की पुरानी प्रतियां ढूढ़ने पर भी कहीं नहीं मिली। वह लाहौर में कांगड़ा समाचार और कांगड़ा वैली से सम्बन्धित रहे। यह वर्ष 1931 से 1934 का समय था। सन् 1950 से 1952 तक वीकली रसाला "जन्म भूमि" धर्मशाला के चीफ ऐडिटर रहे। इस रसाला के प्रिंटर और पब्लिशर जगदीश कौशल थे। यहां पंडित भगत राम जी जो एक विख्यात कांग्रेसी नेता थे भी इससे सम्बन्धित थे। प्रार्थी जी उन्हें अपना राजनैतिक गुरू भी मानते थे। प्रार्थी जी ने कुल्लू में 15 रोजा देवभूमि तथा कुल्लू वैली और हफ्ता वार जन्म भूमि रसालों को यकेबाद दीगरे चलाया। इनके वह एडीटर, प्रिंटर, पब्लिशर और मैनेजर सभी कुछ रहे। उनकी एक पुरानी नोट बुक से पता चला कि उन्होंने इन रसालों के लिए कुल 42 मुस्तकिल अनुवानात यानि स्थाई स्तम्भ कायम किए हुए थे। वह इस प्रकार थे : –

(1) हिमाला के दांवन से	(2) सितारों से आगे
(3) दुखी दुनिया की दर्द भरी बातें	(4) जीवन की झांकी
(5) आपको मालूम है	(6) रोहतांग के उस पर
(7) भगत गाथा, लोक गाथा, कहानी वगैरा	(8) पहाड़ी लोक साहित्य
(9) सेहत और जिन्दगी	(10) फुलझड़ियां
(11) सवाल और जवाब	(12) चांद और सितारे
(13) हमारे शरीर की रचना	(14) घरेलू चिकित्सा
(15) जड़ी बूटीविज्ञान	(16) हमारे भी हैं मैहरबां कैसे-कैसे
(17) फूल कुछ मैंने चुने हैं तेरे दामन के लिए	(18) देश विदेश की खबरें

(19) पहाड़ी प्रदेश की नामावर हस्तियां
(20) तारीख-ए-राजगान
(21) पहाड़ी अदीबों और फनकारों से
(22) हम आपसे पूछते हैं
(23) देव दर्शन
(24) हमारे तीर्थ स्थान
(25) महापुरुषों के वचन
(26) जख्म-ओ-नमक
(27) घरेलू दस्तकारियां
(28) खेतीबाडी की बातें
(29) भेड़-बकरियां की परवरिश
(30) घुड़ पालन
(31) पॉल्ट्री फार्मिंग
(32) फल और फूल
(33) बाजार के भाव
(34) शादी खाना बादी
(35) मर्ग ओ मातम
(36) बर्फ के अंगारे
(37) गीतामृत
(38) जननी जन्मभूमि
(39) उठो मेरी दुनियां के गरीबों को जगा दो।
(40) काश पूछो कि मुदआ क्या है।
(41) आपके राज में ऐसा भी होता है
(42) प्रार्थी रे खड़पके

इनमें से सोलह बेशतर तौर पर इस्तेमाल हुए मालूम होते हैं जो क्रमवार एक, तीन, पांच, छः, सात, दस, चौदह, सोलह, सत्रह, अठारह, बीस, इक्कीस, पच्चीस, तेंतीस, चालीस तथा ब्यालीस नंबर पर हैं। बाकियों पर वे शायद अकेला होने की वजह से काम न कर सके या रसालों के आकार ने इसकी इजाजत नहीं दी।

कुल्लू वैली के सरवरक पर वो जो शेर लिखा करते थे वो इस प्रकार था।

"अपनी बहार अपनी नज़र अपना रंगों बू
फिर भी कोई कमी सी हमारे चमन में है।"

यह रसाले इलाके के तमाम पंचायतों, दफ्तरों, स्कूलों को भेजे जाते थे, इसके इलावा नोट बुक में तकरीबन एक सौ एडरेस कुल्लू और कुल्लू से बाहर दिल्ली तक के मौजूद हैं जहां रसाले बजरिया डाक जाते थे। इससे जाहिर होता है कि उनमें पत्रकारिता किस बुलन्दी की रही होगी। फिनांस भी अपना खर्च करते थे, बेशतर सामग्री खुद तैयार करते थे, खुद ही छपवाते थे, प्रूफ रीडिंग करते थे और लोगों तक पहुंचाने का बंदोबस्त भी करते थे। मददगारों के नाम पर एक दो आनरेरी साथी थे, जो प्रूफ रीडिंग रसालों के बंटवाने या डाक से भेजने में मदद करते थे।

अगला प्रसंग कुल्लूत देश की कहानी से सम्बन्धित है। सातवें अध्याय में सफा नं० 83-85 तक ऋग्वेद की एक ऋचा के हवाले से उषा के शकट का जिकर आया है, जो इस प्रकार है—

जैसा कि ऊपर वर्णन आया है, ऋषि गौतम का सम्बन्ध गोशाल नाम गांव से है, जो मनाली से लगभग तीन मील की दूरी पर है। इन्हीं ऋषि गौतम के लड़के हुए ऋषि बामदेव और इन्हीं की एक ऋचा (ऋग्वेद 11/30/4,) का अर्थ है, "बुरी तरह शीर्ण उषा (सुबह सा दिक) का शकट (अर्थात् रथ) विपाशा के किनारे गिरा, वह पश्चिमी देश की ओर चली गई"। गोया उषा का रथ

जो बुरी तरह टूटा फूटा हुआ था विपाशा के किनारे आ गिरा। ऋग्वेद के मंत्रों के अर्थ गौरवपूर्ण होते हैं, यह भी उनमें से एक है, जिसका अर्थ आसानी से समझ में नहीं आ सकता, हालांकि साधारण परिस्थितियों में इसका अर्थ स्पष्ट है कि उषा का रथ जो सारी रात यात्रा पूरी करके शीर्ण हो चुका था, या यूं कहा जा सकता हैं कि चूर-चूर हो चुका था, विपाशा के किनारे आ गिरा अर्थात् विपाशा के किनारे आकर पौ फटी, गोया व्यास के किनारे प्रभात हुई, फिर सूर्य निकला, और वह धीरे-धीरे पश्चिम की ओर बढ़ता गया, परन्तु यह सीधे-साधे शब्द ही इस ऋचा के अर्थ नहीं है। कल्पना है और सारी रात की यात्रा पूर्ण करके उस रथ का शीर्ण होना साहित्यिक शैली हो सकता है। परन्तु इस टूटे हुए रथ का विपाशा के किनारे आकर गिरना कवि की सूक्ष्म कल्पना और साहित्यिक शैली के साथ-साथ एक वास्तविकता की ओर अर्थ गौरव संकेत भी है।

साहित्य के दृष्टिकोण से इस वेद मंत्र की व्याख्या और स्पष्टीकरण किया जाए तो यह व्यास के किनारे पौ फटने के दृश्य की एक साहित्यिक कला है परन्तु इस कला सौंदर्य की गहराई में तो गोता-खोर के लिए एक अलग अमूल्य मोती छिपा है। आखिर ऋषि बामदेव गौतम ने केवल कविता के लिए इस ऋचा का निर्माण नहीं किया है और जब महर्षि वेद व्यास ने ऋग्वेद की दस हजार ऋचाओं को छांट कर इकट्ठा किया तो इस ऋचा को केवल इसलिए शामिल नहीं किया कि इसमें विपाशा के किनारे प्रभात होने के दृश्य का वर्णन है। ऋग्वेद का हर मंत्र अपने में एक रहस्य लिए हुए है और इसलिए यह रहस्य इस ऋचा में भी जरूर है और जरूर कोई इशारा इसकी पृष्ठभूमि में इतिहास की किसी घटना की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता है।

एक बहुत पुरानी संस्कृत की पुस्तक में, जिसके लेखक का नाम मालूम नहीं हो सका, विपाशा के किनारे प्रभात होने का अर्थ व्यास के किनारे आंख खुलना लिखा है। इस सारी ऋचा का अर्थ इसमें यूं प्रकट किया है कि "बहुत लम्बी प्रतीक्षा के पश्चात् हमारी आंख व्यास के किनारे खुली"। इससे अधिक व्याख्या यद्यपि लेखक ने नहीं की है, फिर भी इसमें कुछ संकेत अर्थ निकालने की दिशा में मिलता है। हो सकता है कि सृष्टि की रचना के जिन सिद्धांतों पर हम पिछले पृष्ठों में बहस कर आए हैं, उनकी पुष्टि में ऋषि बामदेव गौतम ने यह ऋचा कही हो। सृष्टि के आरम्भ में हजारों वर्ष भू-मण्डल में बेहद उथल-पुथल तो रही है। भौतिक परिवर्तन भी जोर-शोर से होते रहे हैं, यहां तक कि बड़े-बड़े पहाड़ भी इधर से उधर और उधर से इधर डोलते फिरते थे। तभी इन्द्र ने बड़े-बड़े पहाड़ों के पंख काट डाले बल्कि उन्हें महादेवी शवरी के कहने से कील भी दिया। जरूरी तौर पर उस दौरान अवश्य अंधेरा रहा होगा, और इस चिरकाल के अंधेरे में उषा का वह रथ जो अंधेरे से प्रकाश की ओर चला आ रहा होगा शीर्ण और चूर-चूर हो गया होगा परन्तु अंततः वह रथ आया और सबसे पहले विपाशा के किनारे गिरा होगा।

उथल-पुथल और परिवर्तनों के अंधेरे के बाद सृष्टि ने आंख खोली, सुख का सांस लिया, और यह सब हुआ विपाशा के किनारे अर्थात् आस-पास जहां इन्द्र ने शैलगिरी को कीलकर आखरी तौर पर और हमेशा के लिए उथल-पुथल के दौर का अंत किया। अंधेरे का नाश कर दिया। विपाशा

के किनारे से उस शांति का आरंभ हुआ, जिसकी आवश्यकता पश्चिम की दिशाओं की भी थी, जहां उथल-पुथल हो रही थी। तब वह उषा .....शांति का संदेश लेकर पश्चिम की ओर गई, और बाद में वहां भी धीरे-धीरे भौतिक परिवर्तन सामान्य स्थिति में आ गए और परिणाम स्वरूप जीवन के चिह्न पैदा होने में सहायता मिली। बाबू अविनाशचन्द्र दास की खोज के अनुसार भी सप्तसिन्धु में ही सबसे पहले जीवन की उषा हुई थी, अर्थात् जीवन का आरम्भ हुआ था, चाहे वह किसी रूप में हुआ हो। मुझे ऋग्वेद का जो हिन्दी अनुवाद सचिवालय लाईब्रेरी में पढ़ने को मिला वह रामगोबिन्द त्रिवेदी द्वारा कृत है और इण्डियन पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली में छपा है। इस में मंत्र 10 और 11 का अर्थ इस प्रकार दर्ज है :—

"10" अभीष्ट दर्शी इन्द्र ने जब उषा के शकट को भिन्न किया था तब उषा भीत हो करके इन्द्र द्वाराभिन्न शकट के ऊपर से अवतीर्ण हुई थी।

"11" इन्द्र द्वारा विचुणित उषा देवी का शकट विपाशा नदी के तीर पर गिर पड़ा। उस शकट के टूट जाने पर उषा देवी दूर देश में अपसरित हो गई।

जैसा कि पढ़े गए पैरों से मालूम होगा कि प्रार्थी जी ने इस ऋचा के बाबत काफी चर्चा की है और यह भी कहा है कि उषा के टूटे हुए रथ का विपाशा के किनारे आकर गिरना कवि की सूक्ष्म कल्पना और साहित्यक शैली के साथ-साथ एक वास्तविकता की ओर अर्थगौरव संकेत करता है। यह सब कुछ लिखने के कई साल बाद हिन्दुस्तान टाईम्स दिनांक 24.8.75 में एक खबर श्रीनगर से इस तौर पर छपी : —

HINDUSTAN TIMES 24-8-75

PEOPLE FROM SPACE SOWED SEEDS OF CIVILISATION

SRINAGAR. Aug. 23 (PTI)-Dr, Erio Von Daniken, noted science fiation writer from Switzerland, presently visiting Kashmir on a search for the "landing site" of the biblical "fiery chariot" of Prophet Ezakiel, today claimed that astronauts of another soler system had visited the earth in ancient times.

Dr. Daniken informally talking to PTI about his mission said these astronauts deposited "seeds" of their V civilisation on the earth that developed into "what we are today".

Evidence of such visits from outer space, according to Dr. Daniken, whose works are a raging controversy in Europe, was available in Indian epics.

He pointedly referred to the mention of "pushpak viman" of Lord

Rama and Arjuna's rendezvous with god Indra in a "mighty aircraft" in the Ramayana and Mahabharta to "prove" his points about "visits" of such beings from outer space.

In this connection, the author also invited the attention of the correspondent to a mention of the "detonation" of a terrible weapon "against Arjuna's army. "This weapon was nuclear-powered", he claimed.

According to Dr. Daniken, the "fiery chariot" in which Prophet Ezakiel took of landed in a green valley in square shaped temple with doors on all sides and sorrounded by high mountains. The Bible also talks of Ezakiel seeing a small rivulet emerging from the southern part of the temple wall.

His researches had led him to believe that there were four such temples in the world. One of these could be the famed Martand temple in Kashmir built by King Lalitaditya, 67 kms from Srinagar.

Dr. Daniken said his current visit was an attempt at finding out with the latest scientific instruments whether Martand was the "landing site" of such a legendary aircraft.

The three other probable sites could either be in Leh in Ladakh district, Urals in the Soviet Union or along the Turkish-Iranian frontier near Mt. Ararat.

इस खबर को पढ़ने के बाद प्रार्थी जी को ऋग्वेद की उषा के शकट के बारे में लिखी गई ऋचा का ख्याल आया और उन्होंने सोचा कि जो कुछ डॉ० डैनीकेन ढूंढ़ रहे हैं वह इस ऋचा से गहरा सम्बन्ध रखता है। उन्होंने डॉ० डैनीकन का पता खोजने की कोशिश की ताकि उनसे इस बारे में विचार-विमर्श या खतो-खतावत हो सके। भारत में स्विटजरलैण्ड के दूतावास को भी लिखा मगर वे भी उनका स्थाई पता न दे सके। यह विषय बहुत दिलचस्प है और मैं समझता हुं कि इस पर किसी विद्वान को शोध करना चाहिए।

इस प्रसंग में प्रार्थी जी की आवामी लीडरी में निडरता के बारे में एक अहम वाक्या रुचिकर होगा। 1957 के जमाने की बात है तब पंजाब में सरदार प्रताप सिंह कैरों, जिन्हें बाद में शेर-ए-पंजाब भी कहा गया, चीफ मिनिस्टर थे। चुनाव के दिन थे। प्रार्थी जी को इस बार किसी कारण पार्टी टिकट नहीं मिला था। वह आरम्भ से ही कांग्रेसी रहे थे, इसलिए वे

आजाद उम्मीदवार थे। कुल्लू में सरदार कैरों कांग्रेसी उम्मीदवार की मदद के लिए खैमाज़ंक्ष थे। मीटिंगे हो रही थीं। प्रार्थी जी की इलैक्शन मीटिंगों में भी काफी हाजरी होती। एक मीटिंग में सरदार कैरों ने खीजकर ऐलान किया कि अगर कुल्लू के लोग कांग्रेसी उम्मीदवार की मदद नहीं करेंगे तो उन्हें सोचना पड़ेगा कि वे उन्हें पंजाब से सबसीडॉईज्ड गेहूं भेजें या न। यह बात प्रार्थी जी के नोटिस में लाई गई तब उन्होंने फौरन एक मीटिंग ढ़ालपुर मैदान में ऐन रैस्ट हाउस के नजदीक जहां सरदार कैरों ठहरे हुए थे मुनक्कत की और कहा कि पंजाब का चीफ मिनिस्टर समझता है कि वह कुल्लू का अन्नदाता है। कोई इन्सान अन्नदाता नहीं हो सकता अन्नदाता तो वो मालिक है जो हर जानदार को रिजक देता है। कुल्लू बगैर गेहूं के जीना जानता है। इसने कई कहते देखे हैं और तब अपना उपजाया हुआ कोदा और सरयारा ही काम आया था। सरदार कैरों तो उस वक्त पैदा भी नहीं हुआ था और साथ ही यह शेर पढ़े -

"यह मेहरेताबां से कह दे कोई कि अपनी किरणों को गिनके रख ले
मैं अपने सहरा के जर्रे जर्रे को चमकना सिखा रहा हूं।
मेरा तखयुल मेरे इरादे करेंगे फितरत पे हुक्मरानी
जहां परिश्तों के पर हैं लरजां मैं उस बुलंदी पे जा रहा हूं॥
और कुल्लू का गेहूं का कोटा वैसे का वैसा कायम रहा।

प्रार्थी जी खुद एक अच्छे शायर थे मगर वे अपने लेखों, तकरीरों में, और विधान सभा की बहसों में अच्छे-अच्छे शायरों के कलाम से चुने हुए शेर इस्तेमाल किया करते थे, जिससे उनके शेरों के इंतखाव के मुतलिक जौक और शौक का पता चलता है। गालिब ने कहा है —

"खुलता किसी पे क्यों मेरे दिल का मामला
शेरों के इंतखाब में रुसवा किया मुझे"।

मैं उनकी एक नोटबुक की मदद से यहां कुछ अशआर लिख रहा हूं। यह सिर्फ नौअनवानों के तहत हैं जबकि उन्होंने तकरीबन चाली अनवानों के नीचे इंतखाब कर रखा है। और मजमुअ का नाम नरंगे ख्याल रखा था। शायद वे इसे छपवाने का इरादा भी रखते थे। इसमें कुछ शेर उन्होंने अपने भी शामिल किए हुए हैं—

इन्सान से

उठ और बदल दे दुनिया को मजबूर न हो मायूस न हो
इनसान के कबजा-ए-कुदरत में कुल-आलम-ए-इनकाम होता है।
जो डूबेगा वो उभरेगा यह बहर-ए-मुहब्बत है नादान
वो मौज किनारा बनती है जिस मौज में तूफां होता है। (नामालूम)

गम-ए-दौरां से

आ ऐ गम-ए-दौरां दर-ए-मैखाना है नजदीक
आराम से बैठेंगे जरा बात करेंगे
जन्नत में न मैं है न मोहब्बत न जवानी
किस चीज पे इन्सां बसर-ए-औकात करेंगे (अदम)

सियासतदां से

धूप चढ़ती हुई दम भर में तो ढल जाती है
चरखे गर दूं की तरह नजर बदल जाती है
ऐसा मत चल कोई समझे जमीं तेरी है
यह तो पांव के भी नीचे से निकल जाती है (सावर)

जोश-ओ-हिम्मत

मसल-ए-हत पेशे नजर है कि हैं खामोश अभी
वरन हम जीस्त के अनुवान भी बदल सकते हैं
उन आजाइम से है लबरेज यह सीना हमदम
जिनसे बिफरे हुए तूफां भी बदल सकते हैं। (शरर)

जहां-ए-रंग ओ-बू

जहान-ए-रंग-ओ-बू ने इस कदर धोखे दिए मुझको
कि मैंने जौकाए-गुलबोसी में कांटों पर जुबां रख दी (चांद कुल्लवी)

इसके हर रंग हर अंदाज से वाकिफ हूं मैं
उम्र गुजरी है मेरी गर्दश-ए-आयाम के साथ (शबाब ललित)

हुस्न-ओ-शबाब

शबाब आया किसी बुत पर फिदा होने का वक्त आया
मेरी दुनियां में बंदे के खुदा होने का वक्त आया (हरिचंद अख्तर)

यहां के हुस्न वालों में बला की दिलनवाजी है
के जालिम रठकर भी मेहरबां मालूम होते हैं। (चांद कुल्लवी)

शिकवा

हमें भी आ पड़ा है दोस्तों से काम कुछ यानि
हमारे दोस्तों के बेबफा होने का वक्त आया (हरिचंद अख्तर)

मेरी किस्मत में गम गर इतना था
दिल भी यारब कई दिए होते (गालिब)

बादाओ सागर

मैंकदे में मुकाम था अपना हर सुराही पे नाम था अपना
हर तुज्जली कनीज थी अपनी हर फरिश्ता गुलाम था अपना (नामालूम)

पीना मुतलिक गुनाह नहीं है चांद छूप के पीना हरामकारी है (चांद कुल्लवी)

जिन्दगी का फलस्फा

इशरत-ए-कतरा है दरिया में फनां हो जाना
दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना (गालिब)

लाई हयात आए कज़ा ले चली चले
अपनी खुशी न आए न अपनी खुशी चले (ज़ौक)

यह आईन-ए-कुदरत है यही असलूब-ए-फितरत है
जो है राह-ए-अमल में गामज़न महबूब-ए-फितरत है (इकबाल)

उनकी शायरी के इस जौक-औ-शौक से मुतासर हो कर बहुत से सियासत दान और नेता भी वक्त बेवक्त अपनी तकरीरों में शेर कहने लगे। चलते-चलते इस सिलसिला में एक लतीफा बयां कर दूं जब प्रार्थी जी मिनिस्टर बनें तो उनके जगह-जगह स्वागत हुए। एक लाला जी जो कांग्रेस में औहदादार थे ओर प्रार्थी जी के नजदीक थे ने भी चाहा कि वे एक स्वागती समारोह में तकरीर करें। उन्होंने इसका जिकर जिला के कांग्रेस अध्यक्ष से किया, जो अच्छे कदरदान थे। अध्यक्ष ने कहा कि लाला जी आप अपनी तकरीर ब्लैक मार्किट की बुराईयों पर करें और कोई अच्छा शेर भी इस सिलसिला में कहें। लाला जी ने उनसे ही कहा कि आप ही बता दीजिए अध्यक्ष ने इलामा इकबाल का एक बामौका मगर मुश्किल शेर उन्हें लिखा दिया, जो इस तरह था—

"ऐ ताईरे लाहूती उस रिज्क से मौत अच्छी
जिस रिज्क से आती हो परवाज में कोताही।"

लाला जी पांचवी जमात तक पढ़े हुए थे उन्होंने जो कुछ बोलना था अच्छी तरह याद किया और इस शेर को भी ज्यूं-त्यूं रट लिया। उनकी तकरीर शुरु हुई। उन्होंने ब्लैक मार्किट की बुराइयां बयान की। ईमानदारी की आमदनी को अच्छा बताया और तब उन्हें शेर फैंकने का ख्याल आया। कुछ स्टेज फोबिया और कुछ शेर का भारीपन, दोंनों के मिले-जुले असर से दो-तीन बार ऐ ताईरे लाहुती—ऐ ताईरे लाहुती ऐ ताईरे लाहुती कहकर बाकि शेर भूल गए।

शाद साहिब जो अच्छे शायर हैं और वहां डी०सी० थे अगली पंक्ति में बैठे हुए थे, कहने लगे लाला जी ताईर तो गुम हो गया अब आगे कहिए। लाला जी ने पैंतरा बदला और कहने लगे, कोई बात नहीं मैं और शेर कहूंगा। उन्होंने तकरीर आगे बढ़ाई और कहा कि अभी तो प्रार्थी जी वजीर बने ही हैं और कई काम होने शुरू हो गए हैं फिर यह शेर कहा—

इब्तदा-ए-ईश्क है रोता है क्या आगे-आगे देखिए होता है क्या।

इस पर प्रार्थी जी कहकहा लगाकर हंसे और कहा लाला जी वाह क्या शेर कहा है। बाकी अगली मीटिंग के लिए रिजर्व रखिए।

प्रार्थी जी का कलाम "वजूद-ओ-अदम" छप चुका है, उनकी शायरी पर प्रदेश और मुल्क के नकादों और शायरों के तपसरे सामने आ चुके हैं जिनमें उनकी शायरी को बजा तौर पर सराहा गया है। शबाब ललित और सागर पालमपुरी ने खूबसूरत ता-आरफ और हरफ-ए-आग़ाज लिखे हैं। सागर पालमपुरी इस बारे में एक शोध पत्र भी पढ़ चुके हैं। मैं कुछ गजलों से दो-दो शेर नमूने के तौर पर पेश करने पर ही इकतफा करुंगा।

जमालियात

क्या तरज-ए-तब्बसुम है कि तहरीर लगे है
बदला हुआ तेबर मेरी तकदीर लगे है
सयाद की इस तरज-ए-तगाफल को तो देखो
ताके है इधर और उधर तीर लगे है
सकूं मिला न मुझे आपके पैयाम के बाद
तड़फ कुछ और बढ़ी आपसे कलाम के बाद
मेरे नसीब के मानों बदलने वालों में
लिखा है नाम तुम्हारा खुदा के नाम के बाद।

फलस्फा-ए-जिंदगी

जिंदगी में शोरशे सुद-ओ-जयां मौजूद है
हर कदम राहे फनां में हासले मकसूद है।
खाक की निस्बत ने पाबन्द-ए-सलासिल कर दिया
वरन मेरी बुसत-ए-परवाज ला महदूद है
फर्क-ए-मौत-ओ-हयात कुछ भी नहीं
दिल लगी है हयात कुछ भी नहीं

बूंद ने पी लिया समुन्दर को
इक पहेली है बात कुछ भी नहीं

प्रार्थी जो कुल्लूत देश की कहानी का दूसरा हिस्सा और हिमाचल गौरव "पर सामग्री इक्ट्ठा कर रहे थे, पता नहीं वो क्या हुई क्योंकि अकादमी में जो रिकार्ड उनके सुपुत्र श्री किरण प्रार्थी ने दिया है उसमें वह मौजूद नहीं। हो सकता है कि यह उनके घर में उनके छोटे सुपुत्र के पास हो। इस बारे में अकादमी को कोशिश करनी चाहिए कि यह सामग्री ढूंढी जा सके और छप सके। जिस तरह उनका कलाम "वजूद-ओ-अदम" हासिल करने के बाद छापा गया है।

वक्त की तंगी के कारण और ज्यादा नहीं लिखा पाया हूं प्रार्थी जी के जीवन में से और भी बहुत से अछूते प्रसंग ढूंढे जा सकते हैं क्योंकि उनका जीवन गुलहा-ए-रंगारंग का गुलदस्ता था। बकौल शबाब ललित उन्होंने जिन्दगी को जीने की तरह जीया और सागर पालमपुरी ने उन्हें एक दरवेश सिफत इन्सान खादिम-ए-कौम मुददबर सियासतदान लसाउनलेज़ाज और फसी बयां मुकर्रर और शायर कहा है। अगर कोई लेखक उनके जीवन की तमाम कड़ियों को इकट्ठा करके उनकी जीवनी लिख पाये तो यह कोशिश काबिल-ए-तारीफ होगी। प्रार्थी जी की शख्सियत इतनी बुलन्द और मोहब्बत खेज थी कि आज भी हमारे मुशायरों, कवि दरबारों और गोष्ठियों में उनकी रूह मौजूद मालूम होती है। जैसे कि उन्हीं के शब्दों में कह रही हो —

"तुमहीद-ए-मुमकीनात नमूद-ए-सहर में हूं।
खुद से बिछुड़ गया हूं मगर अपने घर में हूं।
आईना देखता हूं तो लगता है यूं मुझे
हर ज़ाविये से खूबिए आईना गर में हूं।

बहार कुंज, शिमला–171009.

हिमाचल प्रदेश : एक भौगोलिक अध्ययन

O डॉ० हरिराम जसटा

हिमाचल प्रदेश के उत्तर में जम्मू काश्मीर का राज्य है। पश्चिम में इसकी सीमाएं पंजाब तथा हरियाणा के राज्यों को छूती हैं। दक्षिण में उत्तर प्रदेश व हरियाणा के राज्य स्थित हैं। पूर्व में हमारे प्रदेश की सीमा उत्तर प्रदेश और तिब्बत के साथ लगी हुई है। हमारे प्रदेश की पूर्वी सीमा अन्तर्राष्ट्रीय सीमा है, क्योंकि यह दूसरे देश तिब्बत को छूती है।

हिमाचल प्रदेश को साधारणतया तीन मुख्य भागों में बांटा जा सकता है : –

1 बाह्य हिमालय क्षेत्र या शिवालिक की पहाड़ियां,
2. लघु आन्तरिक हिमालय क्षेत्र, और
3. महान् या ऊपरी हिमालय क्षेत्र।

1. **बाह्य हिमालय शिवालिक की पहाड़ियां** – ये पहाड़ियां मैदानों से लगी हुई हैं। समुद्र तल से इनकी ऊंचाई 275 मीटर से 915 मीटर तक है। कुछ स्थानों पर तो ये पहाड़ियां 1100 मीटर तक ऊंची हैं। ये पहाड़ियां बालू मिट्टी से बनी हुई हैं। अनेक नदियां इन में से होकर गुजरती हैं। इनमें प्रसिद्ध नदियां सतलुज, ब्यास, बग्गर और मारकण्डा हैं। सतलुज नदी शिमला और बिलासपुर के ज़िलों में से बहती हुई पंजाब में प्रवेश करती है और बाद में पाकिस्तान में चली जाती है। ब्यास नदी कुल्लू, मण्डी और कांगड़ा जिलों में से बहती हुई पंजाब में प्रवेश करती है और फिर सतलुज नदी में मिल जाती हैं।

शिवालिक की पहाड़ियों के बीच लम्बी-चौड़ी घाटियां स्थित हैं। इन्ही घाटियों में प्रदेश की घनी आबादी पाई जाती है। सिरमौर ज़िले में किसरादून, मण्डी जिले में बल्हघाटी और सोलन जिले में नालागढ़ और बरोटीवाला प्रसिद्ध घाटियां हैं। ऐसे ही कांगड़ा, हमीरपुर तथा ऊना जिलों की बहुत बड़ी घाटियां इसमें स्थित हैं। इन घाटिओं की ऊंचाई लगभग 410 मीटर से 550 मीटर तक है।

2. **आन्तरिक हिमालय या लघु हिमालयः**—यह हिमालय पर्वत की प्रथम लम्बी धारा है। इसकी चोटियों की समुद्र से ऊंचाई 1400 मीटर से 1650 मीटर तक है। शिमला, डलहौजी, धर्मशाला, चायल तथा कसौली के रमणीक तथा स्वास्थ्यवर्धक स्थान इसी भाग में स्थित हैं।

धौलाधार भी लघु हिमालय का ही भाग है । इसकी चोटियां 4100 मीटर तक ऊंची हैं । बर्फ से ढकी चोटियां कांगड़ा, हमीरपुर तथा ऊना जिलों में अनेक स्थानों से साफ दिखाई देती हैं। उसके उत्तर में रावी के किनारे चम्बा स्थित है। ऐसे ही ब्यास नदी के किनारे कुल्लू और मनाली की घाटियां हैं । ब्यास नदी तथा सुकेती खड्ड के बीच में मण्डी व सुन्दरनगर की घाटियां हैं ।

ब्यास नदी का ऊपरी भाग तथा रावी नदी इसी भाग में बहती हैं । यह नदी पंजाब और जम्मू काश्मीर के राज्यों में बहती हुई पाकिस्तान चली जाती है ।

3. **ऊपरी हिमालय या महान् हिमालयः** - चम्बा जिले के ऊंचे भाग में स्थित भरमौर और पांगी तथा लाहौल स्पिति और किन्नौर के जिले इसी भाग में स्थित हैं । इन पर्वत-श्रेणियों की ऊंचाई 2740 मीटर से 4110 मीटर तक है । चन्द्रभागा (चनाव), ब्यास और रावी नदियों के स्रोत भी इन्ही पर्वतों में स्थित हैं । चनाव नदी जम्मू-काश्मीर के राज्य में बहती हुई पाकिस्तान चली जाती है । किन्नौर तथा लाहौल-स्पिति के ज़िलों का कुछ भाग तिब्बत से जा मिलता है और यह एक पठार सा लगता है ।

पहाड़, नदियां, मैदान और वादियां: काश्मीर की पीर पंजाल की चोटी समुद्र तल से 5000 मीटर से भी ऊंची है । यह सदा बर्फ से ढकी रहती है । यही रावी नदी का स्रोत है। यह नदी उत्तर की ओर से हिमाचल प्रदेश में प्रवेश करती है । इस नदी के किनारे पर हिमाचल प्रदेश का चम्बा ज़िला स्थित है । रावी नदी जम्मू के निचले भाग और चम्बा ज़िले के बीच सीमा बनाती है । रावी नदी के दक्षिण में और लगभग इसी के समानान्तर धौलाधार की शैलमाला है, जिसका उतराव ज़िला कांगड़ा की ओर है ।

ब्यास नदी का ऊपर का भाग कुल्लू की सुन्दर घाटी में से गुजरता है । इसके किनारों पर 6220 मीटर ऊंची इन्द्रासन और 6001 मीटर ऊंची देउटिब्बा की शैलमालाएं खड़ी हैं। वादी की दूसरी ओर लाहौल-स्पिति का ज़िला है । यहां पहुंचने के लिए 13,050 फुट ऊंचा जोत (दर्रा) रोहतांग (भृगतुंग) पार कर जाना पड़ता है । चन्द्रा नदी 16,000 फुट ऊंची लाहौल की प्रसिद्ध झील बारालाचा से निकलती है । दूसरी नदी भागा उत्तर-पश्चिम भाग से निकल कर तांदी के स्थान पर चन्द्रा से जा मिलती है। दोनों मिलकर चन्द्रभागा के नाम से आगे बहती हैं और आगे जाकर यह चनाव के नाम से जानी जाती है।

शिमला क्षेत्र के पहाड़ों की कई शाखायें हैं । कम ऊंची पहाड़ियां अम्बाला के मैदान को ढकती हैं । इन पहाड़ों की मध्य श्रेणियां सतलुज के दक्षिण किनारे पर रामपुर बुशैहर तक पहुंच जाती हैं । मध्य हिमालय जहां समाप्त होता है उससे आगे पहाड़ों की एक तिरछी श्रृंखला है जो सतलुज और यमुना के जल क्षेत्र को जुदा करती है ।

शिमला पहाड़ियों की मुख्य नदियों में सतलुज, पब्बर, गिरी और गम्भर हैं । पब्बर चन्द्रनहान

झील से निकल कर यमुना नदी में जा गिरती है। शिमला क्षेत्र का सारा पानी गिरी नदी में मिल जाता है। कोटखाई से होकर यह सिरमौर जिला में यमुना में मिल जाती है। गम्भर डगशाई के पहाड़ों से निकलती है और उत्तर-पश्चिम की ओर बहती हुई बिलासपुर से लगभग 13 किलोमीटर नीचे सतलुज में जा गिरती है।

हिमाचल प्रदेश में से असंख्य नदी नाले बहते हुए बड़ी नदियों में मिलते हैं। इनमें पांच बड़ी नदियां हैं सतलुज, रावी, यमुना, ब्यास और चन्द्रभागा।

क्षेत्रफल और जनसंख्या:—हिमाचल प्रदेश का क्षेत्रफल 55,673 वर्ग किलोमीटर है। 1981 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 42,37,000 है। क्षेत्रफल में यह पहाड़ी प्रदेश पंजाब, हरियाणा, मिजोरम, नागालैंड, सिक्किम, मणिपुर इत्यादि कई राज्यों से बड़ा है।

ज़िले के शासन-प्रबन्ध के लिए हिमाचल प्रदेश को 12 ज़िलों में बांटा गया है। इन ज़िलों के नाम हैं-शिमला, सोलन, सिरमौर, किन्नौर, कुल्लू, लाहुल-स्पिति, मण्डी, चम्बा, कांगड़ा, हमीरपुर, बिलासपुर और ऊना। ज़िला शिमला पहली सितम्बर 1972 को प्रदेश में ज़िलों का पुनर्गठन हुआ। इसके फल स्वरुप ज़िलों की संख्या बारह हो गई। इनमें एक ज़िला शिमला है - ज़िला महासू के बहुत सारे भाग और पुराने शिमला ज़िले के शिमला उपमण्डल को मिलाकर नये ज़िला शिमला का गठन किया गया है। ज़िला शिमला का क्षेत्रफल 4,968.1 वर्ग किलोमीटर है। इसकी जनसंख्या लगभग 5,10,932 है।

इस पर्वतीय ज़िले में छोटी-बड़ी कई नदियां बहती हैं। इनमें से मुख्य नदी सतलुज है जिसके किनारे पर इस ज़िला के रामपुर और सुन्नी कस्बे बसे हुए हैं। अन्य प्रसिद्ध नदियां पब्बर और गिरी हैं। जिनके किनारे रोहड़ू, हाटकोटी, कोटखाई बसे हैं।

इस ज़िला के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती बाड़ी और बागबानी है। चावल, मक्की, गेहूं, सेब और आलू की उपज होती है। ऊपरी भागों में देवदार, चील, बान आदि के घने वन मिलते हैं। यह ज़िला अपने फलों की उपज के लिए सारे भारत में प्रसिद्ध है। कोटखाई व कोटगढ़ का सेब सारे देश में लोक प्रिय है।

इस ज़िले का सबसे प्रसिद्ध नगर शिमला है। भारत के पहाड़ी नगरों में यह नगर प्रमुख है। स्वाधीनता से पहले शिमला भारत सरकार की ग्रीष्मकालीन राजधानी था। ज़िला का मुख्यालय शिमला में स्थित है। प्रदेश की राजधानी भी यहीं है। यह नगर शिक्षा का प्रमुख केन्द्र है। हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय भी नगर से कोई छः किलोमीटर की दूरी पर समरहिल में स्थित है। हजारों सैलानी गर्मियों में यहां घूमने आते हैं। तब यहां बड़ी रौनक होती है। शीत ऋतु में जब खूब बर्फ पड़ती है तो शिमला तथा इसके निकट कुफरी के स्थान पर बर्फ पर फिसलने के खेल-खेले जाते हैं। इन खेलों को स्कैटिंग और स्कीइंग कहते हैं।

शिमला हिमाचल प्रदेश के लगभग सारे बड़े नगरों से सड़क द्वारा मिला हुआ है। कालका से इस नगर तक रेल की छोटी लाईन भी है। रेल की छोटी लाईन पहाड़ की सुरंगों से गुजरती हुई कई मोड़ों को पार करती हुई ऊंचाई पर चढ़ती है। इस रेल लाईन पर 103 सुरंगे हैं। शिमला से लाखों रूपये के सेब और आलू ट्रकों एवं रेलवे द्वारा मैदानों को भेजे जाते हैं। इस दृष्टि से शिमला व्यापार की मण्डी भी है। इस ज़िला में मशोबरा, सुन्नी, कोटगढ़, कोटखाई, ठियोग, कुमारसेन, जुब्बल, रोहड़ू और रामपुर बुशैहर अन्य बड़े कस्बे हैं।

ज़िला किन्नौरः—किन्नौर क्षेत्र को शिमला से अलग कर के सन् 1960 में ज़िला का रूप दिया गया था। ज़िला का क्षेत्रफल 6520 वर्ग किलोमीटर है और जनसंख्या लगभग 59,547 है। यहां बहुत ऊंची-ऊंची पर्वत-श्रृंखलाएं हैं। पूर्व में शिवकी दर्रे से तिब्बत पहुंच सकते हैं। इसके अतिरिक्त हांगरंग घाटी में क्योरिक के रास्ते, सांगला घाटी में चितकूल के रास्ते होते हुए तथा मूरंग में कुन्न चारंग होकर तिब्बत पहुंच सकते हैं।

यहां सर्दी अधिक पड़ती है। गेहूं, मक्की, जौ, चौलाई, आलू, ओगला तथा मटर आदि फसलों को पैदा किया जाता है।

सतलुज बस्पा बड़ी नदियां हैं। पर्वतीय भाग होने के कारण यहां यातायात बहुत ही कठिन हैं। इस क्षेत्र को सड़क द्वारा शिमला से मिला दिया गया है। यह सड़क सतलुज के किनारे-किनारे चट्टानें काट-काट कर बड़ी कठिनाई से बनाई गई हैं।

यहां जीवन कम उपजाऊ भूमि होने के कारण कठिन है। लोग भेड़, बकरी और खच्चर पालते हैं। ऊन का व्यापार करते हैं। यहां के चिलगोजे और सेब भी प्रसिद्ध हैं।

इस ज़िला का मुख्यालय कल्पा से कुछ दूर रिकांगपियो में हैं। लेकिन कुछ महत्वपूर्ण कार्यालय अभी भी पुराने मुख्यालय कल्पा में हैं।

ज़िला मण्डी : मण्डी ज़िला सुकेत की दो पुरानी रियासतों को मिला कर बनाया गया है। इसका क्षेत्रफल 3915 वर्ग किलोमीटर है और जनसंख्या लगभग 6,44,827 है। इसके प्रसिद्ध नगर है-सरकाघाट, रिवालसर, सुन्दर नगर, चच्योट, जोगिन्द्रनगर और करसोग।

व्यास नदी इस ज़िला में से होकर निकलती है। उहल नदी, सुकेती खड्ड, लूणी व्यास की सहायक नदियां हैं। दक्षिण में सतलुज नदी है। इस ज़िला में बहुत-सी झीलें हैं जिनमें रिवालसर, कमरुनाग और पराशर बड़ी प्रसिद्ध हैं।

चावल, मक्की, गेहूं, जौ और सरसों इस ज़िला की मुख्य फसलें है। जोगिन्द्रनगर तहसील में चाय के बागीचे भी हैं।

मण्डी जिला में नमक की खाने गुम्मा (दरंग) में पाई जाती है । इनसे काले रंग का नमक निकाला जाता है । सफेद नमक भी निकलता है । भारत में नमक की केवल यही खान है । स्लेट के पत्थर की भी काफी खानें हैं । यह पत्थर मकानों की छतें बनाने के काम आता है ।

व्यापार की दृष्टि से मण्डी महत्वपूर्ण जिला है । यह सड़क द्वारा ज़िला शिमला, पठानकोट, कुल्लू, मनाली, होशियारपुर और रोपड़ से मिला हुआ है ।

ज़िला के प्रसिद्ध मेले हैं-मण्डी का शिवरात्रि मेला, रिवालसर का कुथाव का मेला, जोगिन्द्र नगर की जात्रा मेला और सुन्दर नगर का नलवाड़ ।
ज़िला मण्डी के निम्नलिखित प्रसिद्ध स्थान हैं :—

मण्डी :– यह व्यास नदी के किनारे स्थित है ज़िला के मुख्य कार्यालय यहां ही हैं । पुराना नगर है ।

जोगिन्द्र नगर :— यहां उहल नदी के पानी से बिजली पैदा की गई है । यह कांगड़ा घाटी रेल का अन्तिम स्टेशन है ।

सुन्दर नगर :– पहले यह सुकेत रियासत की राजधानी थी । अब यहां व्यास सतलुज लिंक योजना का मुख्यालय है ।

तत्तापानी :- यहां सतलुज नदी के किनारे गर्म पानी का स्रोत हैं, जहां स्नान करने के लिए सैंकड़ों यात्री आते हैं ।

ज़िला बिलासपुर: यह पहले बिलासपुर नाम की रियासत थी । सन् 1948 में रियासत को इक्ट्ठा करते समय इसे अलग प्रदेश बनाया गया । किन्तु सन् 1954 में इसे हिमाचल प्रदेश में एक ज़िले के रूप में मिला दिया गया । इसका क्षेत्रफल 1,161 वर्ग किलोमीटर तथा जन संख्या 2,47,368 है । इसमें बिलासपुर और घुमारवीं दो तहसीलें हैं । बिलासपुर मण्डी से शिमला जाने वाली सड़क पर स्थित है । भाखड़ा बांध इसी ज़िले में स्थित है, जहां सतलुज नदी पर बहुत बड़ा बांध बनाया गया है । यह हमारे देश में सबसे बड़ा और संसार में दूसरे दर्जे का ऊंचा बांध है । सतलुज नदी के पानी को रोक कर बिजली पैदा की गई है । बिलासपुर का पुराना ऐतिहासिक नगर भाखड़ा डूब गया है और अब कुछ दूर ऊंचाई पर नया बिलासपुर नगर बसाया गया है । सतलुज नदी के पानी को रोकने से एक झील बनी है, जिसे गोबिन्दसागर कहते हैं । ज़िले का बड़ा नगर बिलासपुर है ।

दूसरा कस्बा घुमारवीं है । यहा पहुंचने के लिए सतलुज पर एक पुल का निर्माण किया गया है जो संसार में दूसरे दर्जे का सबसे ऊंचा पुल है । नैना देवी का प्रसिद्ध मन्दिर इसी ज़िले में है । यहां प्रतिवर्ष बहुत बड़ा मेला लगता है ।

शिमला हिमाचल प्रदेश के लगभग सारे बड़े नगरों से सड़क द्वारा मिला हुआ है। कालका से इस नगर तक रेल की छोटी लाईन भी है। रेल की छोटी लाईन पहाड़ की सुरंगों से गुजरती हुई कई मोड़ों को पार करती हुई ऊंचाई पर चढ़ती है। इस रेल लाईन पर 103 सुरंगे हैं। शिमला से लाखों रूपये के सेब और आलू ट्रकों एवं रेलवे द्वारा मैदानों को भेजे जाते हैं। इस दृष्टि से शिमला व्यापार की मण्डी भी है। इस जिला में मशोबरा, सुन्नी, कोटगढ़, कोटखाई, ठियोग, कुमारसेन, जुब्बल, रोहड़ू और रामपुर बुशैहर अन्य बड़े कस्बे हैं।

जिला किन्नौर:—किन्नौर क्षेत्र को शिमला से अलग कर के सन् 1960 में ज़िला का रूप दिया गया था। ज़िला का क्षेत्रफल 6520 वर्ग किलोमीटर है और जनसंख्या लगभग 59,547 है। यहां बहुत ऊंची-ऊंची पर्वत-शृंखलाएं हैं। पूर्व में शिवकी दर्रे से तिब्बत पहुंच सकते हैं। इसके अतिरिक्त हांगरंग घाटी में क्योरिक के रास्ते, सांगला घाटी में चितकूल के रास्ते होते हुए तथा मूरंग में कुन्न चारंग होकर तिब्बत पहुंच सकते हैं।

यहां सर्दी अधिक पड़ती है। गेहूं, मक्की, जौ, चौलाई, आलू, ओगला तथा मटर आदि फसलों को पैदा किया जाता है।

सतलुज बस्पा बड़ी नदियां हैं। पर्वतीय भाग होने के कारण यहां यातायात बहुत ही कठिन हैं। इस क्षेत्र को सड़क द्वारा शिमला से मिला दिया गया है। यह सड़क सतलुज के किनारे-किनारे चट्टानें काट-काट कर बड़ी कठिनाई से बनाई गई हैं।

यहां जीवन कम उपजाऊ भूमि होने के कारण कठिन है। लोग भेड़, बकरी और खच्चर पालते हैं। ऊन का व्यापार करते हैं। यहां के चिलगोजे और सेब भी प्रसिद्ध हैं।

इस जिला का मुख्यालय कल्पा से कुछ दूर रिकांगपियो में हैं। लेकिन कुछ महत्वपूर्ण कार्यालय अभी भी पुराने मुख्यालय कल्पा में हैं।

जिला मण्डी : मण्डी ज़िला सुकेत की दो पुरानी रियासतों को मिला कर बनाया गया है। इसका क्षेत्रफल 3915 वर्ग किलोमीटर है और जनसंख्या लगभग 6,44,827 है। इसके प्रसिद्ध नगर है-सरकाघाट, रिवालसर, सुन्दर नगर, चच्योट, जोगिन्द्रनगर और करसोग।

ब्यास नदी इस ज़िला में से होकर निकलती है। उहल नदी, सुकेती खड्ड, लूणी ब्यास की सहायक नदियां हैं। दक्षिण में सतलुज नदी है। इस ज़िला में बहुत-सी झीलें हैं जिनमें रिवालसर, कमरूनाग और पराशर बड़ी प्रसिद्ध हैं।

चावल, मक्की, गेहूं, जौ और सरसों इस ज़िला की मुख्य फसलें है। जोगिन्द्रनगर तहसील में चाय के बागीचे भी हैं।

मण्डी जिला में नमक की खाने गुम्मा (दरंग) में पाई जाती है। इनसे काले रंग का नमक निकाला जाता है। सफेद नमक भी निकलता है। भारत में नमक की केवल यही खान है। स्लेट के पत्थर की भी काफी खानें हैं। यह पत्थर मकानों की छतें बनाने के काम आता है।

व्यापार की दृष्टि से मण्डी महत्वपूर्ण ज़िला है। यह सड़क द्वारा जिला शिमला, पठानकोट, कुल्लू, मनाली, होशियारपुर और रोपड़ से मिला हुआ है।

ज़िला के प्रसिद्ध मेले हैं-मण्डी का शिवरात्रि मेला, रिवालसर का कुथाब का मेला, जोगिन्द्र नगर की जात्रा मेला और सुन्दर नगर का नलवाड़।

ज़िला मण्डी के निम्नलिखित प्रसिद्ध स्थान हैं :—

मण्डी :- यह ब्यास नदी के किनारे स्थित है जिला के मुख्य कार्यालय यहां ही हैं। पुराना नगर है।

जोगिन्द्र नगर :— यहां उहल नदी के पानी से बिजली पैदा की गई है। यह कांगड़ा घाटी रेल का अन्तिम स्टेशन है।

सुन्दर नगर : – पहले यह सुकेत रियासत की राजधानी थी। अब यहां ब्यास सतलुज लिंक योजना का मुख्यालय है।

तत्तापानी : - यहां सतलुज नदी के किनारे गर्म पानी का स्रोत हैं, जहां स्नान करने के लिए सैंकड़ों यात्री आते हैं।

जिला बिलासपुर: यह पहले बिलासपुर नाम की रियासत थी। सन् 1948 में रियासत को इक्ट्ठा करते समय इसे अलग प्रदेश बनाया गया। किन्तु सन् 1954 में इसे हिमाचल प्रदेश में एक ज़िले के रूप में मिला दिया गया। इसका क्षेत्रफल 1,161 वर्ग किलोमीटर तथा जन संख्या 2,47,368 है। इसमें बिलासपुर और घुमारवीं दो तहसीलें हैं। बिलासपुर मण्डी से शिमला जाने वाली सड़क पर स्थित है। भाखड़ा बांध इसी जिले में स्थित है, जहां सतलुज नदी पर बहुत बड़ा बांध बनाया गया है। यह हमारे देश में सबसे बड़ा और संसार में दूसरे दर्जे का ऊंचा बांध है। सतलुज नदी के पानी को रोक कर बिजली पैदा की गई है। बिलासपुर का पुराना ऐतिहासिक नगर भाखड़ा डूब गया है और अब कुछ दूर ऊंचाई पर नया बिलासपुर नगर बसाया गया है। सतलुज नदी के पानी को रोकने से एक झील बनी है, जिसे गोबिन्दसागर कहते हैं। जिले का बड़ा नगर बिलासपुर है।

दूसरा कस्बा घुमारवीं है। यहा पहुंचने के लिए सतलुज पर एक पुल का निर्माण किया गया है जो संसार में दूसरे दर्जे का सबसे ऊंचा पुल है। नैना देवी का प्रसिद्ध मन्दिर इसी जिले में है। यहां प्रतिवर्ष बहुत बड़ा मेला लगता है।

बिलासपुर का काफी भाग कम ऊंचा और मैदानी है। यहां काफी गर्मी पड़ती है। मुख्य फसलें गेहूं, चावल, मक्की, माश तथा अदरक हैं।

जिला कुल्लू :- मण्डी ज़िला से आगे व्यास नदी के साथ कुल्लू की घाटी 80 किलोमीटर लम्बी घाटी है। यह घाटी ऊंचे पहाड़ों से घिरी है। ज़िला की जनसंख्या लगभग 2,38,734 है और क्षेत्रफल 5,400 वर्ग किलोमीटर है। गेहूं, जौ, मक्की, चौलाई, अखरोट और दालें यहां की मुख्य पैदावार है। कुल्लू की घाटी में सेब के बागीचे भी हैं।

कुल्लू इस ज़िले का मुख्य नगर है। यहां ज़िले के मुख्य कार्यालय हैं। इस घाटी में मनाली एक दर्शनीय स्थान है। यहां गर्मियों में सैलानी आते हैं कुल्लू के ही निकट भून्तर में हवाई जहाज का अड्डा भी है। बंजार, नग्गर और आनी प्रसिद्ध स्थान, मणिकरण और वशिष्ठ तीर्थ स्थान हैं। यहां गर्म पानी के स्रोत हैं। रोहतांग दर्रे के पास व्यास कुण्ड से व्यास नदी निकलती है।

कुल्लू के गांव-गांव में देवताओं के मन्दिर हैं। दशहरा के अवसर पर इन देवताओं को पालकियों में सजाकर कुल्लू नगर ले जाते हैं। कुल्लू का दशहरा देश भर में प्रसिद्ध है।

जिला लाहौल व स्पिति :- क्षेत्रफल के आधार पर लाहौल व स्पिति प्रदेश का सबसे बड़ा जिला है। इसका क्षेत्रफल 12,210 वर्ग किलोमीटर है, लेकिन जनसंख्या केवल 32,000 के लगभग है।

यह जिला ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों का इलाका है। यहां की दो प्रमुख घाटियां हैं। एक लाहौल की घाटी और एक स्पिति की घाटी। अधिकांश लोग इन्ही घाटियों में बसे हुए हैं। यहां साल में छ: महीने बर्फ जमी रहती है। गर्मियों में गेहूं, जौ और आलू की पैदावार होती है। कुठ यहां की विशेष पैदावार है। यहां जीवन बड़ा कठिन है। वर्षा यहां बहुत कम होती है। इसीलिए यहां जंगल भी बहुत कम हैं। कैलंग में इस ज़िले के मुख्य कार्यालय स्थित हैं। काज़ा स्पिति की घाटी में है। यहां उपमण्डल अधिकारी के कार्यालय हैं। इस जिले के अधिक लोग बौद्ध धर्म को मानने वाले हैं। यहां के मन्दिरों को गोम्पा कहते हैं।

ज़िला चम्बा :—उत्तर की ओर चम्बा की सीमा जम्मू काश्मीर को छूती है। जिला बनने से पहले भी यह प्राचीन रियासत चम्बा कहलाती थी। इस क्षेत्र की चित्रकारी, लोकनृत्य और लोकगीत विशेषतय: बहुत प्रसिद्ध हैं। इस ज़िले के प्रमुख स्थान हैं चम्बा, चुवाड़ी, सिहूंता, तीसा, चुराह, भरमौर, डलहौज़ी, बनीखेत और पांगी। इसका क्षेत्रफल 8,109 वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या लगभग 3,11,147 है। इसकी बड़ी-बड़ी धारों के नाम पांगीधार, धौलाधार, हाथीधार और जस्कर श्रेणी है। इस ज़िले में चन्द्रभागा और रावी दो प्रसिद्ध नदियां हैं। रावी के किनारे चम्बा शहर बसा हुआ है। मणिमहेश और खजियार दो प्रसिद्ध झीलें हैं। यहां की अधिकतर उपज चावल, मक्की और गेहूं हैं। यहां बड़े-बड़े वन भी हैं। सेब, खुर्मानी, आड़ू आदि फलों के बगीचे भी

पाए जाते हैं। चम्बा में काफी गुज्जर बसते हैं। यहां की शहद, शालें, रूमाल और चप्पलें विशेष तौर पर प्रसिद्ध हैं।

जिले के मुख्य कार्यालय चम्बा में हैं। यहां प्रदेश का सबसे पुराना भूरीसिंह संग्रहालय है। जिसमें प्राचीन काल की कला सम्बन्धी बहुत सी वस्तुएं हैं। यहां का लक्ष्मीनारायण मन्दिर बहुत प्रसिद्ध हैं। अगस्त के महीने में यहां मिंजर का मेला लगता है जिसे देखने लोग दूर-दूर से आते हैं। ककौरा के निकट बकलोह के स्थान पर सेना की छावनी है। चम्बा से 15 किलोमीटर की दूरी पर स्थित खजियार बड़ा सुन्दर स्थान है। डलहौजी एक प्रसिद्ध स्वास्थ्यवर्धक स्थान है।

जिला कांगड़ा: इस जिले की जनसंख्या 9,90,758 के लगभग है और इसका क्षेत्रफल 5334 वर्ग किलोमीटर है। जनसंख्या के आधार पर यह जिला अब भी राज्य का सबसे बड़ा जिला है। यह सुन्दर घाटी धौलाधार पर्वत के आंचल में बसी हुई है। यहां के हरे भरे चाय के बाग बहने वाली छोटी-छोटी नदियां मन मोह लेती हैं।

इस जिले में धर्मशाला, बैजनाथ, कांगड़ा, पालमपुर, देहरा, नूरपुर आदि प्रसिद्ध नगर हैं और पक्की सड़कों से मिले हुए हैं। इस जिले में ज्वालामुखी, चामुण्डा, बैजनाथ तथा कांगड़ा प्रसिद्ध तीर्थ स्थान हैं। यहां प्रतिवर्ष हजारों तीर्थ यात्री आते हैं।

पठानकोट से जोगिन्द्र नगर तक छोटी रेलवे लाईन इस जिले में से गुजरती हैं। नूरपुर-रोड, ज्वालामुखी रोड, कांगड़ा, नगरोटा बगवां, बैजनाथ, पपरोला इत्यादि मुख्य रेलवे स्टेशन हैं।

इस जिले का मुख्य कार्यालय धर्मशाला में है। यहां गर्मियों में पर्यटक आते हैं। यहां वर्षा बहुत अधिक होती है। तिब्बत के दलाई लामा भी आजकल यहां ही रहते हैं। पालमपुर में कृषि विश्वविद्यालय है। पालमपुर चाय के बागीचों और नूरपुर संगतरा, माल्टा तथा नींबू के लिए प्रसिद्ध है। इस जिले की मुख्य पैदावार जौ, मक्की, गेहूं, सरसों व चावल हैं।

इस जिले के बहुत से बहादुर जवान फौज में भर्ती हैं तथा अपने देश की सीमाओं की रक्षा कर रहे हैं। कांगड़ा और नूरपुर में पुराने जमाने के किले और महल हैं। यह जिला भारतीय चित्रकला के क्षेत्र में कांगड़ा चित्रशैली के लिए संसार भर में प्रसिद्ध है।

जिला ऊना: पहली सितम्बर, 1972 को पुराने जिला कांगड़ा के पुनर्गठन से ऊना तथा हमीरपुर नामक दो नए जिलों का जन्म हुआ। ऊना जिला का मुख्यालय ऊना है। इसका क्षेत्रफल 1500 वर्ग किलोमीटर है। और जनसंख्या 3,17,422 के लगभग है। शिवालिक की गोद में बसा होने के कारण इस सारे क्षेत्र का जलवायु गर्म है। इस जिले की भूमि बहुत उपजाऊ है। यहां की मुख्य उपज गेहूं, गन्ना, मक्की और दालें आदि हैं। सब्जियों की भी बहुत पैदावार होती है।

इस क्षेत्र में बहुत से नाले और खड्डे हैं। इस पर पुल बना दिए गए हैं। इस जिले में माता चिन्तपूर्णी का मन्दिर विशेष रूप से प्रसिद्ध है। यहां प्रतिवर्ष हजारों श्रद्धालु माता के दर्शनों के

लिए जाते हैं। गुरुद्वारा बड़भाग सिंह भी विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त बाबा रूद्रु तथा जोगी पंगा हजारों श्रद्धालुओं के लिए आकर्षण-केन्द्र हैं। इस जिले के प्रसिद्ध कस्बे संतोखगढ़, भरवांई, महतपुर, अम्ब, दौलतपुर चौक, अम्बोटा तथा गगरेट हैं।

जिला हमीरपुर:—जिला हमीरपुर का जन्म भी कांगड़ा जिला के पुनर्गठन के फलस्वरूप हुआ। इस जिले का क्षेत्रफल 1561 वर्ग किलोमीटर है और जनसंख्या 3,17,751 है।

जिले का मुख्यालय हमीरपुर में है। हजारों जवान सेना में भर्ती हैं। गेहूं, मक्की, जौ, दालें आदि मुख्य फसलें हैं। यह जिला समुद्र तल से अधिक ऊंचाई पर स्थित नहीं है।

दूसरा प्रमुख नगर नादौन है। यह कटोच राजाओं की प्राचीन राजधानी भी रही है। यहां गुरु गोबिन्द सिंह जी ने मुगलों के साथ युद्ध किया था। यहां ब्यास नदी के किनारे एक ऐतिहासिक गुरुद्वारा स्थित है। इस जिले में सुजानपुर टीहरा, चुनैहरी देवी, बाबा दियोट सिद्ध तथा टौणी देवी प्रसिद्ध दर्शनीय स्थान हैं। राजा संसार चन्द की पुरानी राजधानी सुजानपुर टीहरा में अब एक सैनिक स्कूल है। यहां का होली का मेला प्रसिद्ध है।

जिला सोलन:—पहली सितम्बर, 1972 को सोलन नया जिला बना। ये बघाट, अर्की, कुनिहार, नालागढ़ रियासतों को मिलाकर बना है। इस नए जिले की जनसंख्या लगभग 3,03,280 है तथा क्षेत्रफल 2,100 वर्गमीटर है। इस जिला का मुख्यालय सोलन में स्थित है। परवाणु और बरोटीवाला इस जिला के प्रसिद्ध औद्योगिक क्षेत्र हैं। सोलन में शराब बनाने का सुप्रसिद्ध कारखाना है। शिमला-कालका सड़क पर सोलन एक महत्वपूर्ण पड़ाव है। रेल द्वारा भी यह नगर कालका और शिमला से मिला हुआ है।

शिवालिक के दामन में नालागढ़ तहसील है। पहले यह पुरानी रियासत नालागढ़ की राजधानी थी। एक और नगर कण्डाघाट पुरानी रियासत पटियाला के अधीन प्रमुख स्थान था। यहां से 29 किलोमीटर की दूरी पर चायल प्रसिद्ध स्थान है। यहां संसार में सबसे ऊंचा क्रिकेट मैदान है। गर्मियों में वहां बहुत सैलानी आते है।

धर्मपुर के स्थान पर क्षय रोग के इलाज का एक प्रसिद्ध अस्पताल है। कसौली एक स्वास्थ्यवर्धक तथा रमणीक शहर है। पागल कुत्ते के काटने पर जो टीके लगते हैं वे यहीं बनते हैं।

इस जिला में धान, गेहूं, चना आदि की खेती होती है। मटर, टमाटर, बैंगन आदि सब्जियां भी काफी होती हैं। निचले पहाड़ी भागों में अदरक की उपज भी होती है।

जिला सिरमौर:—जिला सिरमौर पुरानी रियासत सिरमौर से बना है। इसकी सीमाएं हरियाणा और उत्तर प्रदेश को छूती है। इसका क्षेत्रफल 2836 वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या

306,952 के लगभग है। अधिकतर इलाका पहाड़ी है। इस जिला में यमुना, गिरी, तौस, मारकण्डा और बाता बड़ी नदियां हैं। रेणुका झील इसी जिले में स्थित है। यहां प्रतिवर्ष एक बड़ा मेला लगता है।

पांवटा साहिब तहसील बड़ी उपजाऊ है। यहां चावल और गेहूं काफी पैदा होते हैं। इस इलाके को दून कहते हैं। आलू पच्छाद तहसील में और अदरक रेणुका तहसील में बहुत होताहै।

सिरमौर अपने उद्योगों के लिए प्रसिद्ध है। नाहन नगर में दो कारखाने भी हैं। एक कारखाना गन्ने का रस निकालने तथा अन्य प्रकार की लोहे की मशीनें बनाने का है। दूसरा कारखाना गन्दा बरोजा साफ करने का है। इसमें बरोजा और तारपीन बनाया जाता है। पांवटा साहिब में चीनी के बर्तन बनाने के अन्य कई उद्योग हैं। धौलाकुंआ में एक कृषि अनुसंधानशाला है।

नाहन, ज़िला सिरमौर का सबसे बड़ा नगर है। ज़िले के मुख्य कार्यालय भी यहीं हैं। नाहन से सड़कें शिमला, देहरादून, हरिद्वार, चण्डीगढ़, पांवटा साहिब, जगाधरी, ददाहू, बराड़ा और अम्बाला को जाती हैं। दूसरा बड़ा नगर पांवटा साहिब है जो सिक्खों का बड़ा पवित्र स्थान है। यहां सिक्खों के दसवें गुरु गोबिन्द सिंह जी की याद में एक बहुत बड़ा गुरुद्वारा है।

इसके अतिरिक्त ददाहू, सरांहा और राजगढ़ उपनगर हैं। इस जिले में बिजली तथा सिंचाई के लिए गिरीबाटा योजना पर काम अब पूरा हो गया है। इस बिजली योजना से प्रदेश में बिजली काफी मात्रा में पैदा होने लगी है।

अम्बिका निवास, संजौली,
शिमला-6.।

भुण्डा यज्ञ में जन सहयोग

O लोक नाथ मिश्रा

धार्मिक, सामाजिक अथवा राजनैतिक कोई भी कार्य हो, केवल एक व्यक्ति या एक जाति के लोगों से नहीं चलता । इस के लिए अनेक मनुष्यों अथवा सब जाति के लोगों का सहयोग अनिवार्य है । समाज के भिन्न-भिन्न कामों को सम्भालने के निमित्त ही विभिन्न जातियों का निर्माण हुआ है । इस निरमण्ड के भुण्डे में भी सब जाति के लोगों के काम आदि काल से बंटे हुए हैं । यहां के सब लोग अपने-अपने कामों को बड़े चाव और गौरव से करते आये हैं ।

परशुराम क्षेत्र नामक पुस्तक से उद्धृत :—

इस परशुराम और अम्बिका मन्दिरों का कारदार व उसका सहायक दरोगा ब्राह्मण होते हैं । आवश्यकतानुसार अन्य ब्राह्मण भी सहयोग देते हैं परन्तु मन्दिर कमेटी में सब जाति के लोग सदस्य होते हैं । कोठी के भण्डार की चाबी जिस ब्राह्मण के पास होती है, उस का नाम ताईभौरी रखा गया है । इस भुण्डा यज्ञ में जो यजमान होता है, उसे जठराड़ु कहते हैं । वह कुण्ड के पास बैठकर रुद्राष्टाध्यायी का पाठ भी करता है । पुरोहित यहां दो प्रकार के हैं । कृष्णा (क्रेष्टु), शुक्ला (सुहाणु) । कृष्णा पुरोहित का परिवार मुख्य रूप से देवी के साथ काम करता है । निमन्त्रण को (अम्बिका देवी का कलश) जहां कहीं जाता है, तो ये ही लोग उसके साथ प्रबन्धक होते हैं । कुण्ड पर ऋत्विजों का निरीक्षण रखना इस पुरोहित का काम है । साथ ही यह ब्रह्मोक्त का भी पाठ करता है तथा गाहरी ब्राह्मणों को यही छाप भी लगाता है । शिखफेर में गूर के रक्षणार्थ शाउई (सरसों) का प्रक्षेरण करना और मन्दिर के शिखर का पूजन करना भी इनका ही काम है । इनकी जिम्मेवारी में यज्ञ व समाज विषयक कई कार्य सम्पन्न होते हैं । शुकला पुरोहित अध्वर्यु और होता के रूप से कोठी के कुण्ड पर हवन करते हैं । जब परशुराम जी अपनी गुफा से बाहर आते हैं, तो ये ही उनका पहरा देते हैं । क्रौटु ब्राह्मण के घर से कोठी के कुण्ड के लिए आग आती है और यह अम्बिका कुण्ड पर हवन भी करता है । परशुराम की गुफा से बाहर लाने वाले ब्राह्मण को जघनाट बोलते हैं । यज्ञ समाप्ति पर यही उसे वापस गुफा में भी ले जाता है । पुजारी लोग सदस्य के रूप में कुण्ड के पास सामग्री जुटाते हैं, सुबह-शाम पूजा भी करते हैं । फूल माला लाने वाला माली भी ब्राह्मण ही होता है । रावीं पोथी को लाने वाला ब्राह्मण रवाट होता है । यह कुण्ड के पास आचार्य रूप से बैठता है जब बाहर से आने वाले सब देवता अखाड़े में एकत्रित होते हैं, तो पुरोहड़ी विप्र उन

के पास पुरोहड़ (पुराण) पढ़ता है । ज्योतिषी जी कुण्ड खोलने तथा अन्य आवश्यक कार्यों का मुहूर्त बताते हैं । राजकवि फकीरीभाट काव गाता है जिसमें देवी देवताओं का यशोगान रहता है । सुबह–शाम वह क्रो और परशुराम के पास आरती बोलता है । श्री अम्बिका देवी का गूर भी भाट (ब्राह्मण) होता है जिसे बड़ा भोजगी कहते हैं । यह छेरकर जनता को उचित पथ प्रदर्शन अथवा समाधान देता है । यज्ञ भुण्डे के समय विभिन्न ब्राह्मण ही सम्बन्धित देवी देवताओं तथा राजे राणे ठाकुर विष्ट आदि शिष्टजनों के लिए निमन्त्रण लगाने जाते हैं, वे छदैहरु कहलाते हैं । यदि कोई देवता रथ में आया हो, तो उसकी देखभाल महापात्र ब्राह्मण रखता है। गीत गाती ब्राह्मणियां कुण्ड खुलने से लेकर भुण्डा समाप्ति तक प्रातः सायं यज्ञ तथा परशुराम विषयक गीत (गाने) गाया करती हैं । क्रौटु के यहां से आग लाते समय, दीवा धारते अथवा पंच स्थली देवताओं को भुण्डे का छान्दा (निमन्त्रण) लगाते हुए, जलजात्रा के लिए क्रो के जाते आते समय और परशुराम के अखाड़े जाते व लौटती बार ब्राह्मणियों का झुण्ड मांगलिक गीत गाते हुए छत्र के पीछे चलता है । उस समय पालकी में बैठे हुए श्री परशुराम जी को छापे वाले ब्राह्मण कंधे पर उठाकर अखाड़े ले जाते और वापस लाते हैं ।

हमारे इधर क्षत्रियों के नाम से खशिया, सोनार, ठाकुर और विष्ट लोग हैं, तो वैश्य वर्ग में मुख्य रूप से राहु कुछ कायत लोग पाये जाते हैं। खशिया और राहुओं का इकट्ठा नाम कुनैत या जिमींदार है । दूसरे लोगों को राजपूत बोलते हैं। अब नीचे से आकर कुछ वैश्य या वणिये लोग भी रहने लग गए हैं । इनमें से हमारे निरमण्ड में सोनार लोग ही रहते हैं । यज्ञभुण्डे में इन सोनार परिवार के काम बंटे हुए हैं । इसी आधार पर इन की वंशीय संज्ञाएं भी अलग-अलग हो गई हैं । भण्डारी व कौर वाले अन्न का लेन देन करने वाले सोनार को माहता कहते हैं । क्रो को सिर पर उठाने वाला भी माहता ही कहलाता है। जो सुनार कोठी का चौकीदार होते हुए इधर उधर सन्देश भी ले जाता है उसका नाम चाड़ है । कोठी के पहरेदार को कठाऊ भी बोलते हैं । चका (चान्दी के कटोरे) को उठाने वाला जरमाक्टा होता है । निरमण्डातिरिक्त स्थानों में देवता का मुख्य गूर पुजारी अथवा जमींदार होता है । भुण्डे में से एक गूर निरमण्ड का शिखफेर निकालता है, जो हवनातिरिक्त वेला में यज्ञ कुण्ड की रक्षा करता है, उस सोनार को त्रेडडी कहा जाता है । क्रो के साथ अथवा अन्य परिस्थिति में कीडी-दाह (सोनार) सामान को इधर उधर ले जाता है । सोनार देवता या यज्ञ के लिए सोने चान्दी का सामान व आभूषण बनाता है साफ भी करता है । ताम्बे पीतल के सामान को बनाने व साफ करने वाला ठठार कहलाता है । कुण्ड खुलने पर सबसे पहले पहरा देने वाले व दीवा जलाने वाले को कथेल कहते हैं। ऊंचे कण्डे से यज्ञ के लिए बेठर बनेरे की पंत्तियों को लढागी वछेहर गांवों के राहु जमींदार लाते हैं । गढिये (खशिये) लोग ज्यायी की वलतुर को उठाकर ऊपरले खम्भे तक ले जाते हैं । देथवे गांव का ठाकुर शिखफेर में सबसे पहले मुख्य गूर को कन्धे पर उठाता है । जमींदार के कुनैत (राहु) जमींदार यज्ञ में ठाड़ु वगारु अर्थात् छोटे-मोटे काम में हाथ बंटाई करते हैं । कुम्हार यज्ञ के निमित्त दीवे कलशादि देता है । रुताण्डा, कोयल, वायल गांव वाले

खशियाओं को खूंद बोला जाता है। इनमें खताण्डे वाले तो यज्ञ के भण्डार में प्रबन्धक होते हैं। कोयल वाले परशुराम कोठी भीतरी प्रौड़ के, तो वायल वाले बाहरी प्रौड़ पर पहरा देते हैं। शिखफेर के समय देथवा ठाकुर के बाद ये तीनों गांव के राजपूत मुख्य गूर को बारी-बारी से उठाने का काम करते हैं। थाउई (मिस्त्री) लोग परशुराम छत्र, सिंहासन तथा अन्य प्रकार की लकड़ी सम्बन्धी सामग्री बनाने में सहयोग देते हैं। भुण्डे के अन्त में जब शिवद्यापन होता है, तब नाथ बाबा को शिवरूप से सजाते हैं। वे इस रूप से निरमण्ड के रोग शोक दोषादि के टोने को दौड़ते हुए नगर से बाहर निकाल देते हैं।

हरिजनों में विशेष उत्तरदायित्व कराउक नं० । का होता है। यह चाड़ को सूचना देता है, साथ ही कोठा कठारी (अन्नादि) का हिसाब भी रखता है। कराउक नं. 2 में चार व्यक्ति होते हैं जो गांव से बाहर यज्ञादि कार्यों की सूचना देते हैं। उसके बाद बेडे (नड) का नम्बर आता है। भुण्डे में इसका सर्वाधिक महत्व पूर्ण स्थान होता है। यह पहले एकाहार तथा ब्रह्मचार्यादि नियमों से रहकर बलत्तुर को बाटता हैं। पूर्वकाल में उस पर चढ़कर ज्यायी भी पड़ता रहा परन्तु अब उस पर नरमेध का संकल्पमात्र होता है। ज्यायी बकरा डाला जाता है। विषहर राज्य में तो अब भी वेडा ही ज्यायी के पद को विभूषित करता है। लुहार यज्ञ या मन्दिर के लिए लोहे का सामान प्रस्तुत करता है। सोई (दर्जी) लोग देवी व परशुराम के लिए ज्यप्ति रेशमी-कपड़े) दयोटी (तम्बु) और छत्रादि के कपड़ों को सिलते हैं। जब क्रो बाहर जाता है, तब दयोटी डाली जाती है। भुण्डे में आये हुए देवताओं के लिए दयोटी की आवश्यकता रहती है। छत्र के आवरण वस्त्र में अनेक प्रकार के पशु पक्षी पुष्प लता गुल्म आदि की चित्रकारी करने में ये सोई लोग कुशल हस्त होते हैं। भडेयी (खरादी) कोली द्वारा लाये गये उस मोटे वृक्ष के तने को कोपर या खुरच कर खणोटी या खुरल बना देता है। जो बलत्तुर की मूंज भिगोने के काम आती है। यह भडेई समिधा की लकड़ियों को भी ठीक करता है। चाकर (चेले) अथवा छोटे देव के गूर हरिजनों में से निकलते हैं। जो प्रधान देव के सेवक होते हैं। बाजा बजाने वालों को बजन्तरी कहा जाता है। इन १० दगाहरी (मोटा बाजा बजाने वाले) 5 पन्जोहरी (बारीक बाजा वाले)। और १ शंखियां (शंख ध्वनि करने वाला) कुल १६ व्यक्ति होते हैं। 10 दगाहरियों का काम सदा पड़ा रहता है। लगान वसूली तथा कुण्ड खुलने से लेकर यज्ञ समाप्ति पश्चात् परशुराम के गुफा में जाने पर्यन्त इन की 15-16 उपक्रमों (आइटमों) में इन कारुजनों को सम्मिलित होना पड़ता है। बाजे गाजे के बिना यज्ञ का कोई भी काम अच्छा नहीं लगता, शोभा नहीं देता। कुण्ड और क्रो के पास ये लोग सवेरे शाम को प्रतिदिन बेल देते हैं अर्थात् आरती का बाजा बजाते हैं। बीच-बीच में विशेष अवसर पर पंजपजोहरी छाहड़ी गाते हुए बारीक बाजा बजाते हैं। शंख वादन प्रथा अब समाप्त प्रायः है। वैसे शंख बाजै राक्षस भाजै। शंखध्वनि वायुमण्डल में बहुत देर तक गूंजती रहती है। निरमण्ड में कोलियों के दो मुहल्ले हैं। जिनमें पहले उनके ६०-६० परिवार रहते थे। इसलिए इनको दो शाठी बोलते हैं। इन दो शाठी वालों के जिम्मे इस भुण्डा यज्ञ में बहुत काम रखा गया है। पहले ये लोग चार विभिन्न स्थानों से लौ (काट) कर मूंजी लाते हैं।

फिर देवी के खेवड़ु जंगल से खरपोटी के लिए एक सबसे मोटा वृक्ष काट कर लाते हैं। इनके अतिरिक्त ईंधन (जलाने की लकड़ियां) लाना भी इनका ही काम है। ओड़ जाति के लोग तथा मन्दिर बनवाने तथा पुराने की मुरम्मत कराते समय पत्थर का काम करते हैं। पत्थर की मूर्ति बनाना भी इनकी ही शिल्पकला है। इस निरमण्ड के अतिरिक्त जहां कहीं भी भुण्डा होता है, देश, काल, परिस्थिति के अनुसार थोड़ा बहुत परिवर्तन, जन सहयोग प्रायः इसी प्रकार का रहता है।

गांव सिरकोटी, डा० निरमण्ड
वाया रामपुर बुशैहर, जिला कुल्लू, (हि०प्र०)

भूण्डा के अवसर पर देव खेल

हिमाचल प्रदेश के शिल्पकार–श्री मेनका राम

O विनोद हिमाचली

हिमाचल प्रदेश भारतीय सभ्यता का संजीव चिन्ह है। इस प्रान्त की धरती पर भव्य मन्दिरों, कलात्मक मूर्तियों, प्राचीन दुर्गों, भवनों और जल प्राप्ति के लिए बनाई गई बावड़ियों की भरमार है। जहां इन सब वस्तुओं का सम्बन्ध हमारी आंचलिकता से जुड़ा हुआ है, वहीं हम इनका सम्बन्ध भारतीय संस्कृति, सामाजिकता और इतिहास से भी जोड़ सकते हैं। यद्यपि आज हिमाचल प्रदेश सीमेंट और लोहे के युग में प्रवेश कर गया है पर फिर भी प्राचीन मन्दिरों, मूर्तियों तथा भवनों का महत्व कम होने के विपरीत दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। "इन्हें बनाने वाले कौन थे ?" यह प्रश्न सभी व्यक्तियों के मन में बिजली की भान्ति कौंध जाता है। यह बात भी उल्लेखनीय है कि हिमाचल प्रदेश में ही नहीं वरन् समस्त भारत में ऐसी असंख्य मूर्तियों की भरमार है जिस पर शिल्पकार ने अपना नाम नहीं लिखा। इसका विशेष कारण यह रहा है कि भारतीय मूर्तिकारों ने सदैव ही मूर्तिकला तथा वास्तुकला को शिल्प न मान कर साधना का ही प्रतीक माना। ये तथ्य भारतीय चित्रकला में भी सही उतरते हैं। भारतीय शिल्पकला अपनी अनेकता को कला के माध्यम से एकता में समाये, निरन्तर ही हमें प्राचीनता के परिवेश में नये युग की चुनौतियों का सामना करने की प्रेरणा दे रही है। " कला का पुजारी " प्रत्येक दर्शक चाहे वह किसी भी जाति, धर्म या सम्प्रदाय से सम्बन्धित है, मूर्तिकार या कलाकार की भावनाओं को छूने की ही चेष्टा करता है।

प्रतिवर्ष हिमाचल प्रदेश के निवासियों के लिए कुछ माह देव स्थानों की यात्राओं और विवाह समारोहों की भरपूर उमंगे लेकर आते हैं। इसी क्रम में मण्डी जनपद के दरंग क्षेत्र की महिलाएं सज-धज कर अपनी कुल देवी मां चामुण्डा के मन्दिर में नव विवाहित दूल्हे और दुल्हिन को आशीर्वाद दिलवाने हेतु ले जा रही हैं। महिलाएं लयपूर्ण ढंग सेप हाड़ी लोकगीत गा रही हैं। लोकगीत कर्ण प्रिय हैं और मैं खो जाता हूं...... इस लोक गीत में.,

1. मां तू रेहन्दी मसेरने री धारा
   हे मां चामुण्डे ......
   ऐ मईया तू रेहन्दी मसेरने री धारा
   हे माता...... हे मईया चामुण्डे

कुन्ने मईया तेरा कलस लगाया
कुन्ने मईया तेरा भवन बनाया
हे माता...... हे मईया चामुण्डे
जुग-जुग जीए मईया
थोईयां रा मट्ठा
जिन्हे तेरा कलस लगाया
माता तेरा भवन बनाया
हे माता...... हे मईया चामुण्डे

पंजे पुत्तां पाण्डवे मईया
तेरा भवन बनवाया
कृष्णे नर्चा-नची झौर झुलाया
हे माता .. हे मईया चामुण्डे
तूं रेहन्दी दरंगा रे सिरे
मणभर बकरे, भूरे-भूरे भैंसे रा
मईया जी को भोग लगाया
हे माता ...... हे मईया चामुण्डे
तू रेहन्दी दरंगा रे सिरे
हे माता .... हे मईया चामुण्डे

सदियों पूर्व से ही गाये जाने वाले इस भजन रुपी लोक-गीत में स्पष्ट रुप से "थोईयां रा मट्ठा" अर्थात् थोई जाती के सुपुत्र का वर्णन आया है जिसने किसी मन्दिर का निर्माण पाण्डवों के अनुरोध पर किया था।

मण्डी नगर के स्कूल बाजार में प्रतिदिन सैंकड़ों व्यक्तियों के आवागमन के मध्य, नीले गगन के नीचे पत्थर की मूर्तियां बनाने वाले साठ वर्षीय शिल्पकार श्री मेनका राम "थोई" जाति से सम्बन्धित हैं। उनके कथनानुसार हिमाचल प्रदेश की धरती पर शिखर, गुम्बददार, शुण्डाकार, समतल तथा बन्द छत इत्यादि शैलियों में मन्दिरों भिन्न-भिन्न प्रकार के पत्थर से कलात्मक मूर्तियों, भवनों तथा दुर्गों का निर्माण थोई जाति के कारीगरों ने किया है। थोई जाति हिमाचल प्रदेश की कनैत जाति की ही एक उप-जाति है। कनैत जाति पर हिमाचली साहित्य में भी विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। इसके अनुसार पृथ्वी खोदने या इस धंधे में संलिप्त लोगों को खणैत बा खनैत के नाम से पुकारा गया जो कनैत शब्द का ही एक अपभ्रंश रुप है। मण्डी राजघराने से सम्बन्ध रखने वाले वृद्ध व्यक्तियों के अनुसार जब खणैतों ने अपना पेट भरने के लिए शिल्पकला तथा भवन निर्माण कला को अपना लिया तब राजपूत बिरादरी ने उन्हें छोई अर्थात् अछूत की संज्ञा देकर उनसे अपने समस्त सामाजिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध तोड़ लिए। भारतवर्ष के मुसलमान काल में छोई जाति के कुछ लोगों ने हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय भागों को छोड़कर तेहरवीं शताब्दी

में नेपाल की ओर पलायन किया तथा उन्हें छोई से थोई या थारु जाति के नाम से भी पुकारा जाने लगा। आज इस कनैत या भूमिहर राजपूत जाति को हिमाचल प्रदेश के निवासी थोई जाति तथा नेपाल की तराई में लोग थारु जाति के नाम से पुकारते हैं।

श्री मेनका राम के अनुसार उनके पूर्वज देवताओं के अभियन्ता विश्वकर्मा की सुपुत्री संजना की सन्तान हैं। हिन्दू पौराणिक गाथाओं के अनुसार संजना का विवाह सूर्य देव से हुआ था।

श्री मेनका राम बताते हैं कि उनका पड़दादा मंगल था। मंगल और उसके परिवार के सदस्यों ने 1527 ई० में मण्डी नरेश अजबर सेन के आदेश पर भवनों, मण्डी नगर के प्रसिद्ध मन्दिरों, कलात्मक मूर्तियों और गुम्मा के हिडिम्बा मन्दिर का निर्माण मध्यकालीन अनुकृतियों के आधार पर किया था। अपना कार्यपूर्ण करवाने के उपरान्त अजबर सेन ने मंगल का दाहिना हाथ कटवा दिया। मंगल अपने कार्य में इतने दक्ष थे कि उन्होंने अपने बाएं हाथ से ही सर्वप्रथम मण्डी के तुंगल क्षेत्र के थौंगा पिंगल नामक स्थान पर एक भव्य बावड़ी का तथा उसके उपरान्त रिवालसर में मण्डी नरेशों की कुल देवी नैना-देवी के मन्दिर का निर्माण किया। अपने दादा फालू राम के बारे में श्री मेनका राम बतलाते हैं कि उनके तीन पुत्र धून्धू, ठाकुर तथा पीरु थे। हिमाचल प्रदेश के निर्माण कार्यों में उन्होंने सक्रिय योगदान दिया। श्री मेनका राम के पिता पीरु के दस पुत्र थे। उनमें से आठ महामारियां फैलने के कारण काल के ग्रास में समा गये तथा मात्र श्री मेनका राम तथा प्रभुराम ही बच सके श्री मेनका राम का भाई प्रभु राम कुवैत में रह कर भवन निर्माण करता है, तथा श्री मेनका राम का एक पुत्र जर्मनी में रह कर मूर्ति कला तथा भवन निर्माण के कार्यों में व्यस्त है। श्री मेनका राम के अनुसार पश्चिमी देशों में पत्थर की मूर्तियों की मांग अधिक है।

"भारत में मूर्तिकला के विकास का भविष्य क्या है?" इस बारे में श्री मेनका राम का विचार है कि थोई जाति की नई पीढ़ी स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने के कारण प्राचीन शिल्प कला से विमुख होती जा रही है। यह कार्य कल्पना और श्रम का है तथा नई पीढ़ी इस झंझट में फंसना ही नहीं चाहती। चित्रकार मात्र रंग और ब्रश से कागज पर चित्र ही बनाता है पर शिल्पकार अपनी कल्पना से सर्वप्रथम पत्थर पर पैंसिल से चित्र बनाता है और फिर मूर्ति का निर्माण करता है। जरा सी भूल हो जाने पर मूर्ति की सुन्दरता ही समाप्त हो जाती है।

"मूर्ति को किस प्रकार बनाया जाता है?" इस बारे में श्री मेनका राम सर्वप्रथम पत्थर की खान से मूर्ति के आकार की शिला काटतें हैं। मूर्ति बनाने वाला पत्थर एक विशेष प्रकार का पत्थर होता है, जिसे "कुप्प" कहा जाता है। यह पत्थर नीला, भूरा तथा श्वेत रंग का होता है। कुछ पत्थर नर्म होते हैं और कुछ कठोर। पत्थर प्राप्त करने के उपरान्त श्री मेनका राम एक चित्रकार की भांति कल्पना करते हुए मूर्ति को साकार रुप देते हैं। खुदाई तथा मूर्ति की आकृति प्राप्त करने के लिए छैनियों, निमाणियों, बटेलू, टाकियां, नेरनू, तेसी, हथौड़े, घण, सन्नी तथा ऐरन नामक

उपकरण प्रयोग में लाए जाते हैं । एक छोटी मूर्ति लगभग दस दिन में तथा बड़ी मूर्ति दो मास में ही उनसे बन पाती है । इसके विपरीत श्री मेनका राम गृहस्थी के प्रयोग में आने वाली वस्तुएं जैसे कुण्डियां, परातें तथा चकला-वेलन इत्यादि भी बनाते हैं । हिमाचल प्रदेश में 'उद्घाटन पट्ट' बनाने वाले श्री मेनका राम एक मात्र ही कारीगर हैं । उन्हें अपने हाथों से हिमाचल प्रदेश के भूतपूर्व नरेशों, सभी मन्त्रियों, विधायकों तथा प्रमुख अधिकारियों के नाम, निर्माण तथा दिनांक भिन्न-भिन्न प्रकार के पत्थर के चक्कों पर लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।

श्री मेनका राम के मन में हिन्दू जगत के समस्त देवी-देवताओं के नाम तथा उनकी भिन्न-भिन्न मुद्राएं समाई हुई हैं । मूर्ति निर्माण हेतु उन्हें किसी भी चित्र की नकल करने की आवश्यकता नहीं पड़ती । श्री मेनका राम आज तक एक लाख से ऊपर पत्थर की मूर्तियां बना चुके हैं पर फिर भी सामान्य व्यक्तियों के लिए उनका जीवन अज्ञात है । श्री मेनका राम के अनुसार पत्थर की देवी या देवता को मूर्त रुप देने के उपरान्त मूर्ति को सदैव ही मन्दिर या घर के आंगन में स्वच्छ स्थान पर रखना चाहिए । घर के भीतर या गन्दे स्थान पर रखने के कारण मनुष्य को भयंकर स्वप्न आने तथा अमंगल होने का भी भय रहता है ।

काले रंग की मूर्तियों के रहस्य पर मेरी जानकारी बढ़ाते हुए श्री मेनका राम ने भैरों देवता की मूर्ति बनाते हुए बतलाया कि अखरोट का कोयला बनाकर शुद्ध देसी घी में मिलाकर मूर्ति के ऊपर तब तक मालिश की जाती है जब तक की वह काले रंग की न हो जाए । हिमाचल प्रदेश की समस्त काले रंग की मूर्तियां इसी प्रकार काली की गई हैं ।

"प्राचीन मन्दिरों के पत्थर किस प्रकार जोड़े गये हैं ?" इस बारे में श्री मेनका राम ने मुझे बतलाया कि आजकल सीमेंट का युग है । प्राचीन काल में उनके पूर्वज मसाला स्वयं ही तैयार करते थे । पत्थरों को जोड़ने के लिए गुड़, रीठा, उड़द की दाल, सन, चूना सुर्खी को घराट में पिसवा कर, जल में मिलाकर गारा बनाया जाता था । इस गारे को दो मास तक सड़ने देने के उपरान्त पुनः हाथ की चक्कियों से पीस कर मसाला बनाया जाता था । इसी मसाले से भवनों के पत्थर जोड़े जाते थे । वाकई यह कार्य श्रम का था और इस श्रम का परिणाम हमें आज भी दिखाई देता है कि किस गर्व से हमारी प्राचीन संस्कृति के प्रतीक दुर्ग, भवन और मन्दिर सही दशा में स्थित हैं ।

"आजकल किस प्रकार के देवी-देवताओं की मूर्तियों का प्रचलन अधिक है ?" इस प्रश्न के उत्तर में श्री मेनका राम ने वर्णन किया कि वैष्णो, सन्तोषी तथा दुर्गा नामक देवियों के भिन्न-भिन्न रुपों की मांग हिमाचल प्रदेश तथा पंजाब में अधिक है । पंजाब के सिक्ख भक्त भी देवी शक्ति को स्वीकार करते हैं । इन पत्थर की मूर्तियों को महात्मा, मन्दिरों के पुजारी तथा बाबू लोग ही अधिक खरीदते हैं ।

" मेरे यह पूछने पर कि अपने जीवन में अधिक से अधिक मूल्य पर कौन-कौन सी मूर्ति बेची ? श्री मेनका राम ने प्रसन्न होकर मुझे बतलाया कि लगभग बारह वर्ष पूर्व उन्होंने पत्थर से बनाई हुई एक देवी की मूर्ति को सौलह सौ रुपये में बेचा था।

लोक गीतों के अनुसार अवश्य ही "थोईयां रा मट्ठा" श्री मेनका राम हिमाचल प्रदेश के कुशल मूर्तिकार हैं जो प्रायः लोक-शैली में ही प्रतिमाएं घड़ते हैं पर उनकी कला में अनायास ही मध्यकालीन मूर्ति-कला की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। मूर्ति निर्माण के अवसर पर श्री मेनका राम मूर्ति विज्ञान के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर भी ध्यान रखते हैं जबकि उन्होंने न तो नियमित रूप से शिक्षा पाई है और न ही ढेर सारी पुस्तकों का अध्ययन किया है। आज के गतिशील युग में लोकगीतों के माध्यम से जन मानस का आशीर्वाद प्राप्त कर हिमाचल प्रदेश के श्री मेनका राम ही एक मात्र शिल्पकार हैं जिन्होंने अपने पूर्वजों की कला को बीसवीं शताब्दी तक खेंचा है।

अपने कार्य में व्यस्त मूर्तिकार श्री मेनका राम
(चित्र : राजीव स्टूडियो, मण्डी के सौजन्य से)

जनसंपर्क अधिकारी
भारत सरकार, धर्मशाला
जिला कांगड़ा (हि०प्र०)

स्वतन्त्रता संग्राम में हिमाचल प्रदेश का योगदान

○ डॉ० पद्मचन्द्र काश्यप

हिमाचल प्रदेश अपने वर्तमान स्वरूप में, स्वतंत्रता के बाद अस्तित्व में आया । उससे पूर्व इसकी भौगोलिक परिधि में कुल्लू, कांगड़ा आदि के ब्रिटिश शासित पंजाब प्रांत के भागों को छोड़ केवल छोटे-छोटे राज्य राहणू और ठकुराइयां भर थीं । लेकिन समूचे देश में बहने वाली स्वतंत्रता की ब्यार से भारत का कोई भी कोना अछूता नहीं रहा । अतः गिरि-सतलुज, ब्यास, रावी उपत्यकाओं के पहाड़ी क्षेत्र में भी किसी न किसी रूप में आज़ादी के लिए संघर्ष लम्बे अर्से तक, बल्कि देश के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से भी पूर्व के दशक से चल पड़ा था ।

सन् 1846 में अंग्रेजों और सिक्खों के बीच हुई संधि के अनुसार सतलुज और ब्यास के बीच के सभी क्षेत्र अंग्रेजों के हाथ में आ गए थे । इस क्षेत्र के राजाओं को आशा थी कि जिस प्रकार अंग्रेज़ों ने सतलुज घाटी के राजाओं को गोरखों के चंगुल से मुक्त करा उन्हें उनके राज्य वापिस कर दिए थे, उसी प्रकार उनकी रियासतें भी वापिस दे दी जाएंगी । लेकिन रावी के क्षेत्र में चम्बा और ब्यास घाटी में मंडी-सुकेत को छोड़ अंग्रेजों ने यह सारा इलाका अपने अधीन ले लिया । राजाओं को जागीरें और पैंशनें देकर किनारे बैठा दिया था । अपनी पैतृक सम्पत्ति, शक्ति एवं अधिकार खो जाने से क्षुब्ध हो इन सभी राजाओं ने अंग्रेजों की सत्ता को ही समाप्त करने का प्रयत्न किया और एक बार नूरपुर से लेकर रोपड़ तक का सारा क्षेत्र अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह से भड़क उठा । इस विद्रोह में नूरपुर के रामसिंह की भूमिका विशेष उल्लेखनीय रही थी । विद्रोही राजाओं को अंग्रेजों ने बंदी बना कर अल्मोड़ा भिजवा दिया था ।

उधर सतलुज क्षेत्रीय रियासतों को अंग्रेजों ने, शिमला, स्पाटू, कोटगढ़ और कोटखाई जैसे सामयिक महत्व के स्थानों को छोड़, ठाकुरों, राणाओं और राजाओं को लौटा तो दिया था लेकिन उन पर पोलिटिकल अफसर एवं सुपरिन्टेन्डेन्ट जैसे अंग्रेज अफसर लाद दिए थे । ये अफ़सर न केवल राजाओं-राणाओं की गतिविधियों पर नज़र रखते थे, बल्कि इनकी मंज़ूरी के बिना कोई महत्वपूर्ण कदम उठाया ही नहीं जा सकता था। इस प्रकार यहां भी अंग्रेजों ने प्रच्छन्न रूप से अपना ही अधिकार जमा लिया था । वे ही राजाओं के उत्तराधिकारियों और वजीरों आदि की नियुक्ति किया करते थे । परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों को खुश रखना ही इन राजाओं का परम धर्म बन

गया। अपनी सुरक्षा की जिम्मेदारी अंग्रेजों के हवाले कर इन लोगों ने अपना जीवन एशो आराम में डुबो दिया। वजीर आदि अहलकार मनमानी करने लगे। राजा लोग पोलिटिकल अफसरों और सुपरिन्टेन्डेन्टों को खुश रखने के लिये और अपने दुर्व्यसनों की पूर्ति के लिए प्रजा के ऊपर बेतहाशा कर लगाने और बेगार लेने लगे।

इक्के-दुक्के अपवादों के सिवाय राजा प्रायः गैर जिम्मेदार बन गए। उनके और प्रजा के बीच संबंधों का जो सिलसिला चला रहा था, वह टूट गया और राजा के देवता रूप में भी बदलाव आता गया। प्रजा कुशासन की दोहरी चक्की में पिसने लगी, उसकी सुनवाई के मार्ग एक प्रकार से बंद हो गए। जनता के कुप्रबंध एवं करों के असहनीय भार के विरुद्ध आंदोलन चलाए, लेकिन अंग्रेजों की सहायता से उन्हें कुचल दिया गया। इस प्रकार के विद्रोह 1859 में बुशैहर में, 1870 और 1880 में सिरमौर, 1876 में नालागढ़ और सुकेत, 1883 और 1930 में बिलासपुर और 1905 में बाघल में हुए थे।

इस तरह अंग्रेज शासित क्षेत्रों में पुराने राजाओं, मियांओं और राजकुमारों ने विद्रोह किए और उधर राजाओं की रियासतों में लोगों ने इन राजाओं के विरुद्ध छुट-पुट आंदोलन चलाए। चाहे उद्देश्य जो भी रहा हो, कारण कुछ भी रहे हों, दोनों क्षेत्रों में किसी न-किसी रूप में आजाद होने की भावना ने जन्म ले लिया था। कांगड़ा-कुल्लू आदि अंग्रेज शासित इलाकों के लोगों को देश के अन्य आंदोलनों में हिस्सा लेने के मौके मिले, लेकिन रियासतों के लोगों को राजाओं से ही छुटकारा पाने के लिए संघर्ष में जूझते रहना पड़ा।

नतीजा यह हुआ कि इस पहाड़ी क्षेत्र के लोग दो भागों में बंट गए और उनके आंदोलनों के स्वरूप भी दो तरह के हो गए। एक भाग राजाओं की दासता से मुक्त हो गया और दूसरा उनकी बेड़ियों में जकड़ा रह गया। इसका सीधा प्रभाव सांस्कृतिक क्षेत्र पर भी पड़ा। ब्यास उपत्यका के लोगों के बीच आधुनिकीकरण, जागरण की लहर पहले आ गई। उनके माध्यम भी पृथक रहे। कांगड़ा, कुल्लू के लोग कांग्रेस जैसे राजनीतिक और आर्य समाज जैसे धार्मिक-सामाजिक आंदोलनों में भाग लेने लगे, लेकिन सतलुज गिरि के क्षेत्र के लोगों को "सुधार सभाओं", 'भ्रांत-मंडलों' और 'प्रजा मंडलों' का सहारा लेना पड़ा। ये राजा लोग अधिकांशतः पुरातनवादी थे। अतः उन्होंने सामाजिक चेतना से भी अपने लोगों को अछूते रखने का प्रयत्न किया। लेकिन कब तक ?

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक ये रियासतें भी देश में चले आ रहे स्वतन्त्रता आन्दोलन से प्रभावित होने लग पड़ी। मंडी के हरदेव तथा हिरदाराम ने गदर पार्टी में महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्हीं से प्रेरित होकर मंडी में एक युवक संस्था बनी जिसके प्रमुख सदस्यों में राजा भवानीसैन की खैरागढ़ी रानी भी थी। इस संस्था के कुछ अन्य सदस्य थे सिद्धु खराड़ सिद्धु, जवाहर सिंह, ज्वाला सिंह बदरी, शारदा राम, लौंगू और दलीप सिंह। उन्होंने मण्डी और सुकेत में क्रांतिकारी आंदोलन की ज्वाला भड़काई। रानी खैरागढ़ी को देश निकाला दिया गया और अन्य

नेताओं को कैद की लम्बी-लम्बी सजायें दी गईं। इससे पूर्व शोभाराम ने मंडी शासकों के विरुद्ध विद्रोह का नेतृत्व किया था और विफल होने पर काला-पानी की सजा भुगती थी।

शिमला और कांगड़ा कांग्रेस के आंदोलनों के केन्द्र थे। अंग्रेजों की ग्रीष्म कालीन राजधानी शिमला में पंडित गैंदामल, मौला मुहम्मद नौनी, अबदुलगनी, ठाकुर भागीरथ लाल और हकीम त्रिलोकनाथ थे। कांगड़ा में पहाड़ी गांधी बाबा कांशी राम, ठाकुर हजार सिंह, गोपाल सिंह और चतुर सिंह सन् 1927 में सुजानपुर के निकट तल के विख्यात कांग्रेस सम्मेलन के प्रमुख नेता थे। अंग्रेजों की बलोची पुलिस ने कार्यकर्ताओं को मारा-पीटा, उनकी गांधी टोपियां उतार फैंकी। नेताओं को गिरफ्तार कर मुकद्दमा चलाया गया और उन्हें लम्बी कैद की सजाएं दी गईं। अंग्रेजों द्वारा कांगड़ा में दमचक्र का एक यह भी कारण था कि अंग्रेजी फौज में कांगड़ा के बहुत सारे लोग भर्ती थे। वे नहीं चाहते थे कि डोगरों के इस भर्ती क्षेत्र में किसी प्रकार का आंदोलन जड़ पकड़े। इसी सभा में पहाड़ी गांधी ने यह व्रत लिया कि जब तक देश आजाद नहीं हो जाता, वह काले कपड़े ही पहना करेंगे। कामरेड रामचंद्र अपने विद्यार्थी जीवन से ही स्वतन्त्रता संग्राम से सम्बद्ध हो गये थे और सारी उम्र आजादी की जंग में भाग लेते रहे। ऊना आदि क्षेत्रों में श्रीमती सरला शर्मा ने स्वतन्त्रता संग्राम में सक्रिय भाग लेकर जनता में नवजीवन का संचार किया। उनके पति कामरेड परस राम ने कांगड़ा के लोगों को संगठित करने और उनमें आजादी के प्रति उत्साह जागृत करने में बड़ा योगदान दिया। यह दम्पति युवक-युवतियों के लिए प्रेरणा-स्रोत रहा और इसने गरीबी, अज्ञान-जनित शिथिलता को दूर करने में बड़ा काम किया।

बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में न केवल राजनीतिक आंदोलन चले, बल्कि अनेक धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों ने भी लोगों को प्रभावित कर नई चेतना फैलाई, जिसने हिमाचल के गठन के बाद प्रदेश में नवजागरण का सूत्रपात किया और चहुंदिशी विकास के वे आयाम स्थापित किए, जिससे मूल्यों में वह बदलाव आया कि समाज का स्वरूप ही एकदम बदल गया।

प्रत्येक परिवर्तन लाने में सदैव, सर्वत्र युवावर्ग का हाथ हुआ करता है। वे ही हर क्रांति के सेनानी होते हैं। हिमाचल प्रदेश में भी यही स्थिति रही। यहां से लोग पढ़ाई के लिए बाहर जाते रहे। उच्च शिक्षा के लिए यहां कोई सुविधा नहीं थी। ले दे के एक-आध इंटरमीडियेट कालेज था। रियासतों में तो थोड़ी-बहुत नौकरियां राजदरबारों में मिल जाती थीं, अंग्रेजी इलाकों में नौकरियां ज्यादा नहीं थीं, इसलिए नौकरी के लिए बाहर ही जाना होता था। कांगड़ा से तो युवक मुख्यतः फौज में जाते थे, जहां उन्हें केवल सिपाही भर्ती किया जाता था। यदि फौज में भर्ती नहीं हो पाए, तो कहीं न कहीं घरेलू नौकरी कर लिया करते थे। इधर शिमला के आस-पास के लोग बाहर जाकर घरेलू नौकर ही बन पाते थे, या शिमला में सरकारी दफ्तरों में नौकरी कर लेते थे। अक्सर ये नौकरियां छोटे दर्जे की हुआ करती थीं, क्योंकि उच्च शिक्षा तो बहुत कम लोग प्राप्त कर सकते थे। पढ़ाई का केन्द्र लाहौर हुआ करता था, लेकिन इस स्थिति का एक

अच्छा नतीजा यह हुआ कि ज्यादा से ज्यादा लोग देश की परिस्थितियों से वाकिफ होते गए। उनका संपर्क बढ़ता गया और अपनी हालत पर वे गहराई से सोचने लग पड़े।

रियासतों में राजनीतिक क्षेत्र में युवक प्रजामंडल की गतिविधियों के साथ जुड़ गए और सन् 1945 में शिमला में हिमालयन हिल स्टेस्ट्स रीजनल कांसिल का गठन हुआ। इन प्रजामंडलों का जाल काश्मीर से लेकर गढ़वाल तक फैल चुका था। इस कौंसिल के डॉ० यशवंत सिंह परमार, सर्वश्री पद्मदेव, शिवानंद रमोल, सत्यदेव बुशैहरी, दौलत राम सांख्यायन, सदाराम चंदेल और मनसा राम अग्रणी नेता थे। सन् 1946 में चम्बा से गढ़वाल तक की 48 रियासतों के प्रतिनिधियों की जो कान्फ्रेंस मंडी में हुई, उसमें इस क्षेत्र के लोगों ने पहली बार प्रदेश के भावी राजनीतिक स्वरूप की परिकल्पना का स्पष्ट चित्रण किया। कांफ्रेंस ने एक प्रस्ताव पास किया कि सारी पहाड़ी रियासतों के नुमाइंदों की एक निर्वाचित संस्था बनाई जाए जिसे रियासतों में मंत्री व कर्मचारी नियुक्त करने के अधिकार हों।

देश के स्वतंत्रता संग्राम में युवकों ने प्रदेश के भीतर और बाहर खुल कर काम किया। कांगड़ा, शिमला, कुल्लू आदि इलाकों के लोग कांग्रेस में शामिल होकर कार्यरत थे और रियासतों में प्रजामंडलों द्वारा यह आंदोलन चलाया जा रहा था। अंग्रेजी इलाकों में हो रहे संवैधानिक परिवर्तनों का प्रभाव रियासतों पर भी पड़ रहा था और वहां जो प्रांतीय सरकारें सन् 1937 के चुनाव के बाद बनी थीं, उनसे ही प्रेरित होकर रीजनलकौंसिल ने मंडी कान्फ्रेंस का प्रस्ताव पास किया था।

सन् 1947 में देश आजाद हुआ, लेकिन रियासतों की प्रजा तो गुलाम ही रही। उन पर राजाओं-राणाओं का शासन बना ही रहा। इसीलिए, सन् 1948 के प्रारंभिक दिनों में, देश की आजादी के पांच महीने बाद, इन रियासतों की प्रांतीय स्तर पर सिरमौर के शिवानन्द रमोल की प्रधानगी में एक अस्थायी सरकार का गठन किया गया जिसमें बुशैहर के पद्मदेव, सुकेत के मुकुन्दलाल और बिलासपुर के मास्टर सदाराम चन्देल सदस्य थे। जनता अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही थी और राजा-राणा अपने अधिकारों को बनाए रखने में प्रयत्नशील थे। इन शासकों को देश की राजनीतिक एवं सामाजिक मुख्यधारा में लाने के लिए जनता को काफी लम्बा संघर्ष करना पड़ा। धामी, मंडी, पझौता, रामपुर, सराहन, सुकेत सभी जगह आंदोलन किए, गोलियां खाईं और राजाओं की जेलें भरीं।

३४, मैत्री अपार्टमैंटस,
ए-३, पश्चिमी बिहार,
नई दिल्ली।

शोधसार

मण्डयाली लोक गीत–एक अध्ययन

O डॉ० काशीराम आत्रेय

पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ से 1973-74 में मण्डयाली लोकगीत-एक अध्ययन विषय पर पी. एच. डी. की उपाधि के लिए लिखे गए शोध प्रबन्ध का सार निम्न प्रकार से प्रस्तुत है।

शोधसार का प्रारूप— "मण्डयाली लोक-गीत एक-अध्ययन" में लोक गीतों के संग्रह की चुनी हुई संग्रह सारिणी लगाई है, वर्गीकृत रूप में वही गीत उस वर्ग में विभाजित किये हैं। शोध प्रबन्ध में संग्राहकों तथा सहयोगियों की नामावली भी क्षेत्री रूप में वद्ध है। शोध प्रबन्ध लगभग छः सौ पृष्ठों का है। आलोक में शोध मात्रा का पूर्वचित्र प्रस्तुत किया गया है। मार्गद्रष्टा विद्वानों को तथावत स्मरण भी किया गया है। प्रत्येक अध्याय का विवरण भी दिया गया है। प्रथम भाग में सात अध्याय तथा द्वितीय भाग में लोकगीत परिशिष्ट तथा लोकगाथा परिशिष्ट संलग्न है।

प्रथमाध्याय-भौगोलिक परिस्थिति- प्राचीन कालीन धरातलीय परिवर्तनों का इतिहास नाम माण्डव्य ऋषि, विशिष्ट सूचना -महाभारत कालीन नाम स्थिति पर्वत, नदी, पहाड़, वन, जनजीवन, पशु वनस्पति तथा प्राचीन मांडव्य आदि कालीन अध्ययन की खोजबीन का पूर्ण ब्यौरा है। प्रसिद्ध इतिहासपरक सूत्रों की भी चर्चा की है।

द्वितीय अध्याय— लोकगीत को लोक, लोक वार्ता, लोक साहित्य के आलोक में समझाया गया है। उद्‌गम तथा प्रेरणा स्त्रोतादि लोक के माध्यम से लोकगीतों की परिभाषाओं में लोक काव्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। परिभाषा का तुलनात्मक रूप परख कर निष्पत्तियां भी निकाली गई हैं। पारिभाषिक रुप में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोक काव्य को व्याख्यापित करने की विनम्र चेष्टा की गई है।

तृतीय अध्याय— लोक गीतों का वर्गीकरण- लोकगीतों के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वर्गीकरणों के भेदों की चर्चा की गई है। इस के आधार पर क्षेत्रीय लोकगीतों की व्याख्या करने में क्रियात्मक रूप में लोकगीतों को व्याख्या सहित सन्दर्भित किया है। प्रत्येक विज्ञान के

वर्गीकरण की समीक्षात्मक चर्चा की गई है और उसी के पश्चात् वर्गीकरण को अतीव वैज्ञानिक रूप देकर एक ही क्षेत्र की वर्गीकरण की सुगमता, सुविधा और वर्गीकरण के चार भेदों की चर्चा की गई है।

चतुर्थ अध्याय : मण्डयाली लोक गाथायें :—इस अध्याय में लोकगाथाओं की परिभाषा की समस्या को समाधान पूर्वक उठाया है। मण्डयाली लोकगाथाओं को अचेत वर्गीकरण सहित उसी प्रकार व्याख्यापित किया गया है। वर्गीकरण के विविध प्रकारों को तथावत प्रतिष्ठापित करके लोकगाथाओं के विश्व चर्चितनामों की भी चर्चा की गई है जिससे लोकगाथा को परिभाषित रूप में वैज्ञानिक बनाने की चेष्टा की गई है।

पंचम अध्याय : लोकगीतों में सामाजिक पक्षों का उद्घाटन :- सामाजिक परम्पराओं, रहस्यों, आचार विचार, वेश-भूषा, पहरावा, भोजन, वस्त्र, कर्मकाण्ड, नारी-पुरुष, आबाल-वृद्ध, जन-जीवन की चर्चा द्वारा प्रत्येक पक्ष की विशिष्टता की चर्चा सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में मूल्यांकित की गई है। वेष-भूषणों से लेकर प्रत्येक प्रकार से प्राचीन तथा नूतन समाज की परम्परा तथा परिवर्तन को यथासम्भव रूप में प्रकट किया गया है।

षष्ठ अध्याय : लोकगीतों का सांस्कृतिक मूल्यांकन :- संस्कृति के पक्षों का उद्घाटन करके तथा संस्कृति की परिभाषा समेत प्रत्येक संस्कार की लोक परिपाटी, लोकगीत, लोकमंगलाचार, लोक पद्धति का पूर्ण विवरण क्रियात्मक रूप में प्रत्येक संस्कार का लोकगीत सुनने को मिल जाता है जो कि सांस्कृतिक थाती का पुरावशेष आगामी पीढ़ियों के अवलोकनार्थ धरोहर रूप में लिखित तथा प्रकाशित सम्पत्ति के रूप में सुरक्षित किया जाना अपने में एक महत्वपूर्ण कार्य है। प्रत्येक संस्कार के प्रति आशीर्वचन अथवा चर्चा सहित पंक्तियों के विषयवस्तु द्वारा इसकी महत्ता की गुणात्मक तथा आकारात्मक वृद्धि भी सम्पन्न हो पाती है। संस्कारों के वर्णगत तथा समाजगत मूल्यों की प्रतिष्ठापना भी इसमें तथावत सम्पादित हो जाती है।

सप्तम अध्याय : लोकगीतों का साहित्यिक मूल्यांकन :- इस अध्याय में हिन्दी तथा अन्य भाषा में प्राप्त साहित्यिक विधाओं के तथा समीक्षात्मक मानदण्डों के आधार पर लोक काव्य की परिपाटी पर लोकगीतों के भावपक्ष, कलापक्ष तथा उनकी अनुभूति व अभिव्यक्ति का समुचित मूल्यांकन भी दर्शाया गया है। रसों के परिपाक का भी दिग्दर्शन कराने की विनम्र चेष्टा की गई है। भावात्मकता, भाव प्रवणता, प्रवहन शीलता तथा सभी दृष्टियों में लोकगीतों के शास्त्रीय पक्ष को परखा गया है। ऋग्वैदिक स्वरों तथा मात्रिक और वार्णिक छन्दो वद्धता की परीक्षा, स्वर, ताल तथा लय की शंका का समाधान करने की विनम्र चेष्टा की गई है। इस दृष्टि से विशिष्टाध्ययन प्रस्तुत किये जाने की पर्याप्त सम्भावना इस क्षेत्र में बनी हुई है। अनेक पक्षों के उजागर करने का पर्याप्तावकाश निरन्तराध्ययन की वस्तु बनी है।

द्वितीय खण्ड:– प्रथम भाग : इसमें प्रथम अध्याय में लोकगीतों में संस्कार (1) लोकगीत (2) ऋतुकाल विशिष्ट गीत (3) पर्व त्यौहार के समय गाये जानेवाले लोकगीत (4) धार्मिकानुष्ठान के काल के गेय लोकगीत (5) नृत्य काल के लोकगीत (6) श्रमकाल के लोकगीत (7) मनोरंजन काल के लोकगीत। इस प्रकार सभी लोकगीतों को सात विशिष्टावसरों के लोकगीतों में विभक्त करके किसी भी खण्ड के लोकगीतों का विभाजन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त लोकगीतों को स्थानीय सनाम वर्गीकरण में तथा रसों की दृष्टि भावों की दृष्टि तथा अन्य दृष्टियों से वर्गीकरण की प्रायोगिक सम्भावनायें भी दर्शाई गई हैं। इन सभी का प्रयोगात्मक रूप भी सविस्तार वर्णित है। इस को किसी भी लोक साहित्य का वर्गीकरणाधार माना जा सकता है।

लोक गाथा परिशिष्ट 2 :- इसमें लोकगाथाओं के क्षेत्रीय प्राप्य गेयांशों को संकलन रूप में एकत्रित किया गया है।

परिशिष्ट-3 इस में लोकगीत-संग्रह विवरण है। प्रत्येक सहयोगी का पता है।

परिशिष्ट-4 चतुर्थ परिशिष्ट में सन्दर्भ ग्रंथों की सूची है। इसमें प्रमुख सन्दर्भ ग्रथों का विवरण दिया गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण शोध-प्रबन्ध को निम्नवत प्रारूप रूप में अध्ययन किया जा सकता है।

(1) शोध प्रबन्ध के प्रथम खण्ड के सात अध्याय।

(2) शोध प्रबन्ध के द्वितीय खण्ड में शोध प्रबन्ध की सामग्री।

प्रथमाध्याय में लोकगीत परिशिष्ट सात अध्यायों में तथा द्वितीय परिशिष्ट।

लोकगाथाएं :–तृतीय परिशिष्ट लोक गायक संग्राहकों की सूची चतुर्थ परिशिष्ट में सन्दर्भ ग्रंथ सूची है।

समग्र क्षेत्रीय परिचय प्रथमाध्याय में है। आलोक में शोध प्रबन्ध की पूर्व योजना का संक्षिप्त सार प्रस्तुत है। लोकवार्ताकारों की भी सुन्दर व्याख्या शोध प्रबन्ध प्रथमाध्याय में संक्षिप्त रूप में दर्शाई है। प्रत्येक अध्याय में सामाजिक, धार्मिक तथा आंचलिक संस्कृति की मुख्य धारा से तुलनात्मकता दर्शाने का विनम्र प्रयास भी सन्दर्भ ग्रंथों के अध्ययन की सामग्री के आलोक में अभिव्यक्त है। प्रत्येक अध्याय को यथोचित वैज्ञानिक परिनिष्ठित रूप में प्रदर्शित किया गया है जिसके आधार पर सामग्री का सुन्दर विश्लेषण भी किया जा सका है। शोधकालीन संकलित सामग्री का उपयोग पुस्तकाकार में प्रकाशित करने के लिए भी पूर्ण किया जा रहा है। इस प्रकार शोधकार्य के विशालायामों की पूर्ति का क्रम अनवरत चला है।

—द्वारा नवीन होटल मण्डी (हि.प्र.)

किन्नौर क्षेत्र में प्रचलित-धार्मिक गीत

O डॉ॰ सुरजीत सिंह पटियाल

भारतीय जीवन यात्रा सदा से धर्म परक रही है। देवी-देवता उसके अवलम्ब हैं और उन्हें सन्तुष्ट करना उसका प्रथम कर्तव्य है। अतः स्वाभाविक ही है कि भारतीय लोक साहित्य व लोक संगीत में इस तत्व को वांछनीय स्थान मिले। भारत की कला सदैव धर्म के पुट के साथ पुष्पित व पल्लवित हुई है। प्राचीन काल का अध्ययन करने के पश्चात् ज्ञात होता है कि प्रत्येक समाज में धर्म की प्रधानता रही है। धर्म भारतीय संस्कृति का मूल आधार होने के कारण ही अनेक आक्रमणों, सामाजिक परिवर्तनों तथा राजनैतिक उथल-पुथलों के बावजूद भी यह देश सदियों से एकता के सूत्र में बंधा रहा है। धर्म में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। धार्मिक अथवा भक्ति संगीत के विषय में 'रजनी बालके' लिखती हैं कि ईश्वर की भक्ति हेतु जो भाव एक साहित्यिक रूप लेकर फिर संगीतात्मक रूप में परिवर्तित किये जाते हैं, उन्हें 'भक्ति गीत' कहते हैं[1]। प्राचीन काल से ही हिन्दू धर्मावलम्बी लोगों ने धर्म के अर्न्तगत संगीत को प्रभु भक्ति का एक प्रमुख साधन माना है। आज लोक संगीत में जो धार्मिक लोक गीतों का प्रचलन है यह उसी का जीता जागता प्रमाण है। किन्नौर भी धार्मिक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। यहां के लोग धार्मिक हैं और धार्मिक लोकगीतों को किन्नौर के लोक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। किन्नौर में प्रचलित धार्मिक लोक गीतों से ऐसा प्रतीत होता है कि यहां के लोगों में भी धर्म और अंधविश्वास पूरी तरह विद्यमान है। किन्नौर के लोग अपने जीवन में धर्म को विशेष महत्व देते हैं। यहां के लोगों ने सदा अपने से ऊपर एक सत्ता को समझा है जो प्रेम रूप में सर्वव्याप्त है। उसके प्रति श्रद्धा भाव एवं भक्ति, यहां के लोकगीतों में प्रवाहित होती है। यहां के धार्मिक जीवन में देवी-देवताओं को प्रमुख स्थान प्राप्त है। किन्नौर का प्रत्येक गांव धर्म की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रत्येक गांव में स्थानीय देवी-देवताओं के मन्दिर और बौद्ध धर्म के लामा और गोम्पा विद्यमान हैं। देवी-देवता और लामा को किन्नौर के धार्मिक कार्यों का मुखिया माना जाता है। भौगोलिक दृष्टि से यहां के छोटे-छोटे बिखरे हुए गांव में किसी-शासक का भय इतना महत्व नहीं रखता जितना देवी-देवताओं का। किन्नौर के लोगों को देवी-देवता पर यहां तक विश्वास है कि यदि कोई व्यक्ति बीमार इत्यादि हो जाता है तो यहां के भोले-भाले लोग दवा-दारू को प्राथमिकता देने के स्थान पर

1, बालके, रजनी, धर्म और संगीत, संगीत कला विहार वर्ष-34, अंक-4, अप्रैल 1981, पृ॰ 206

देवी-देवताओं को ही स्मरण करते हैं[1]। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अनेक अवसरों पर उन्हें रथों में सजा कर मन्दिरों के प्रांगण (सन्थइ) में बाहर निकाला जाता है और नचाया जाता है। किन्नौर में अनेक प्रकार के देवी-देवता हैं, जिनकी स्तुति यहां के लोग धार्मिक लोकगीतों के माध्यम से करते हैं। किन्नौर के धार्मिक लोकगीतों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यहां के धार्मिक लोकगीत लगभग यहां की स्थानीय धार्मिक मर्यादाओं से जुड़े हुए हैं जैसे 'ईशूरस' अथवा 'बडारन' गीत के अनुसार ईशूरस (महादेव) का जन्म अण्डे से होना, महादेव का युकुन्त रस (बर्फ के देवता की दो लड़कियों गोरे व गंगे से विवाह करना। वाणासुर व हिरमा का मुलट धार पर मिलना, वाणासुर का हिरमा से बलपूर्वक विवाह करना और उनके यहां अठारह पुत्र पुत्रियों का जन्म होना। वाणासुर और हिरमा के यही अठारह पुत्र-पुत्रियां ही इस क्षेत्र के बड़े देवी देवता हैं और इन देवी-देवताओं से सम्बन्धित कई धार्मिक गीत इस क्षेत्र में प्रचलित है। जैसे स्थानीय देवी चण्डिका द्वारा अपने भाई बहनों के बीच क्षेत्र का बंटवारा करने से सम्बन्धित गीत, चण्डिका के द्वारा छल से ऊषा देवी के पति होनू राक्षस (देव) का वध करने सम्बन्धी गीत। देवी-देवताओं के वरदान और अभिशाप से सम्बन्धित कई लोकगीत यहां सुनने को मिलते हैं—जैसे ऊषा देवी का सुन्दरी डीवसरनी के सौन्दर्य से ईर्ष्या करना और उसको अभिशाप देकर मार डालना। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य धार्मिक गीत इस प्रकार है।

(1) शिव के रूप का वर्णन सम्बन्धी गीत। (2) देवताओं के द्वारा मनुष्य की कठिनाइयों का निवारण करने सम्बन्धी गीत 'सङगीयङ्' रामायण का गीत, सूंगरा देवता का गीत, नाग का गीत, नारायण का गीत तथा कुल देव का गीत इत्यादि।

किन्नौर के धर्मावलम्बी लोग पृथ्वी पर अवतरित समस्त वस्तुओं को देवी-देवता स्वरूप मानते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार यहां के पेड़, नदी-नाले, पहाड़, टीले आदि सारे ही ईश्वर स्वरूप है। इस कारण अनेक लोकगीत इन देवी-देवताओं के शक्ति सामर्थ्य की स्तुति में गाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त वन-देवियों के गीत भी यहां प्रचलित हैं। वन-देवियां कण्डों की जमीन में बीजी गई फसलों तथा वहां पर रखी गई भेड़ बकरियों की रक्षक मानी जाती हैं। यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि किन्नौर में हिन्दू और बौद्ध दो धर्मों का प्रचार है। इसलिए जहां एक ओर किन्नौर में हिन्दू देवी-देवताओं से सम्बन्धित लोकगीत प्रचार में हैं वहीं दूसरी ओर बौद्धधर्म से सम्बन्धित गीत भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। बौद्ध धर्म तथा बौद्ध मन्दिरों से सम्बन्धित गीतों में 'लोचा रिम्पोछे' (लोचा लामा) का गीत सबसे पुराना है। इसके अतिरिक्त पूर्वणी गांव के आज्यान परिवार तथा भावा के लागङ् के गीत प्रसिद्ध हैं। 'लाक्टासो फोच पालस' अर्थात् लोक्टस वहां का गधा चराने वाला गीत भी बौद्ध धर्म से सम्बन्धित गीतों में विशेष स्थान रखता है। इस गीत का नायक नरगू, गधा चराने वाला था। उसकी समाज में कोई प्रतिष्ठा नहीं

1. शर्मा, श्रीदत्त, महासूई लोकगीतों में जन-जीवन, सोमसी वर्ष-10, अंक-3, जुलाई 1984, पृ० 57

थी। परिवार के लोग भी उससे ठीक व्यवहार नहीं करते थे। परन्तु जब नरगू, बौद्ध धर्म में दीक्षा लेकर वापिस आया तो लोगों में उसका मान बहुत बढ़ गया।

नेसङ् टुल्कू (नेसङ् गांव का अवतारी लामा) से सम्बन्धित गीत, नीमा जाङ्मो का गीत भी बौद्ध धर्म से सम्बन्धित गीतों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इस गीत में एक ऐसी लड़की का वर्णन हैं जो लिओ गांव के एक अमीर घराने से सम्बन्ध रखती थी। बौद्ध धर्म की सेवा के लिए उसने मोह माया को छोड़ दिया और सन्यासिन (चोमो) बन गई। गीत के अनुसार नीमा जाङ्मो ने सन्यासिन बनने के बाद अपना जीवन तिब्बत की सीमा के पास "टाशीगाङ्गोन" नामक एक बौद्ध मन्दिर में व्यतीत किया।

किन्नौर में धार्मिक लोकगीतों की संख्या अन्य गीतों की अपेक्षा कहीं अधिक है। इन धार्मिक लोकगीतों की रचना कब और किसने की इसका कोई ठोस प्रमाण प्राप्त नहीं होता। अपनी परम्पराओं से जुड़े किन्नौर के लोग इन गीतों को अपनी धार्मिक मान्यताओं के अनुसार मानते चले आ रहे हैं। किन्नौर में प्रचलित धार्मिक लोकगीतों को अध्ययन की सुविधा के लिए चार भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१ शैव परम्परा से सम्बन्धित गीत।
२. वैष्णव परम्परा से सम्बन्धित गीत।
३. स्थानीय देवी-देवताओं से सम्बन्धित गीत।
४. बौद्ध धर्म से सम्बन्धित देवी-देवता व अवतारी लामाओं के गीत।

किन्नौर में प्रचलित इन धार्मिक लोकगीतों के कुछ प्रकारों का वर्णन स्वर लिपियों सहित आगे किया जा रहा।

धार्मिक गीत नं० 1

दोलो रीङ् रीङ् बीमायाले-2
कोएले लासु कोमोयाले-2
कोएलेलासु कोमोयाले-2
शिवाजी-शिवशंकराले-2
शिव जी शिवशंकरुली-2
बालूदेन शौङ् खैमायाली-2
बालूदेन शौङ् खैआमायाली-2
जोटा दाररैआयाली-2
दोली जोटो बोएरङ्ली-2
गंगा जी दो-दो याली-2
गंगा जी दो-दो ली-2
भागीरथी गंगायाली-2

शिवजी शिवशंकरूली-2

कागचो शौङ् खैआमायाली-2

कागोचो शौङ् खैआमायाली-2

कुण्डलु मालीङ्ली-2

डेलीयोशौङ् खैआमायाली-2

शमशान् बोस्पायाली-2

शिवाजी शिवशंकरार्ला-2

तिलकी रानशोयाली-2

तिलीलकी रानशौली-2

कोए कुकुम तिलकाली-2

भावानुवाद : यह गीत शिवरात्रि के दिन गाया जाता है। इस धार्मिक गीत में लोक कवि ने भगवान शिव के रूप का वर्णन किया है। कवि कहता है कि भगवान शिव ने सिर पर अपनी बड़ी-बड़ी जट्टाओं से मठ बना रखा है, जिसमें से **भागीरथ** की गंगा निकल रही है। शिव शंकर के गले में सांपों की माला तथा कानों में बड़े-बड़े कुण्डल **है**। शिव जी ने अपने शरीर पर श्मशान की मिट्टी मली हुई है । शंकर अपने माथे पर कुंकुम का तिलक लगा रहे हैं।

स्वर लिपि :

1— 2 3 — —	1 –2 3 — —	1 - 2 3 — —	1—2 3 — —
प — ध — प —	— रे प - म -	प — ध — प —	प — — — — —
दो ऽ लो ऽ रीं ऽ	ऽ ङ् री ऽ ङ्	बी ऽ मा ऽ या ऽ	ले ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
प — ध — स —	प ध प — म —	रे — — — स —	रे म प — म —
दो ऽ लो ऽ रीं ऽ	ऽ ङ् री ऽ ङ् ऽ	बी ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ	मा ऽ या ऽ लें ऽ
रे — स — रे —	— — रे — स —	रे — प — म -	प— — — — —
को ऽ ए ऽ ले ऽ	ऽ ऽ ला ऽ सु ऽ	को ऽ मो ऽ या ऽ	ले ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
प — ध — स —	प ध प — म —	रे— — — — —	रे — — — — -
को ऽ ए ऽ ले ऽ	ऽ ऽ ला ऽ सु ऽ	को ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ	मो ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

गीत के शेष चरण भी इसी क्रम से गाये जाते हैं।

धार्मिक गीत नं 2

गुली गो होना हैला गुली गुयाले होना,

हायाबे होना हैला हायाबीयाली होना ।

दङ् गोलैओ दङ्शौङ हेला दङ्गोलैओया लिदङ्शौङ,

सोनेओ सापनी हैला, सोनेयो सायलिपनी,

सोनेओ सापनी हैला, सोनेयो सायालिपनी,

छज़ागा डुग्योश हैला, छज़ागायाली डुग्योश ।

छजागा डुग्योश हैला, छजागायाली डुग्योश,
जागाली दैमो हैला, जागालियालै दैमो।
जागाली दैमो हैला, जागालियालै दैमो,
सापसु कुलङ् दैस हैला, सापासु कूयालैलङ् दैस।
सापसु कुलङदैस हैला, सापासु कूपालैलङदैस,
याङली मासोरैया हैला, याङली मायालिसोरैया
माजङ सानतङो हैला, माजङ सानलितङाया,
शुभ डोष्बोर जोम-जोम हैला, शुभ डोम्बोया जोम।
शुभ डोम्बोरू माजङा हैला, शुभडोम्बोरा माजोया,
जाए दूरैं हाततोश हैला जाई दूरियाली हाततोश।
दूरैं शोङ खैयामा हैला, दरैं शोङाली खैयामाया,
ग्रोसनम मोनशिरस हैला, ग्रोसनम मौनालिशिरस।
दङ गौलैओ दङ शोङ हैला, दङ गोलैओयाली दङशोङा,
नालचं ऊषाली हैला नालचं ऊषाली शारैंघी।

भावानुवाद : यह गीत ग्रोसनम (सूंगरा) गांव के देवता ग्रोसनम मौनसिरस, निचार गांव की देवी ऊषा और सापनी गांव के पीरयो नागस की स्तुति में गाया जाता है। एक बार ये तीनों देवी-देवता सापनी गांव में एकत्रित हुए। गीत के अनुसार ग्रोसनम मोनशिरस ऊषा देवी और पीरयो नागस सापनी गांव के मन्दिर के प्रांगण में ताल की धीमी लय पर धीरे-धीरे नृत्य कर रहे हैं। इनके सिरों से आग की लपटें निकल रही हैं। मन्दिर के प्रांगण के मध्य साठ लोग (तीन बीस) गांव की किसी समस्या के समाधान के लिए सभा कर रहे हैं। लेकिन वे लोग किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंच पा रहे। अन्त में समस्या के समाधान के लिए वे इन देवी-देवताओं की सहायता लेते हैं, इत्यादि।

स्वर लिपि

1 2 3	1 2 3	1 2 3	1 2 3
प रे म	प— —	पध स --	ध — म
गु ली ऽ	को ऽ ऽ	होऽ ना ऽ	हे ऽ ला
पध सं —	ध म प	म — —	रेस ध —
गुऽ ली ऽ	गु या ले	हो ऽ ऽ	नाऽ या ऽ
स रे स	रे — —	रेम प —	म रे म
हा या ऽ	वे ऽ ऽ	होऽ ना ऽ	हे ऽ ला
रे म प	म स रे	स — —	स — —
हा ऽ या	वी या ले	हो ऽ ऽ	ना ऽ ऽ

गीत के शेष चरण भी इसी क्रम से गाये जाते हैं।

धार्मिक गीत न० 3.

लोचा रिनबोछे, गोनपा चे जाङ्ग्योशाले,
गोनपा चे जाङ्ग्योश ।
गोनपा चे जाङ्ग्यो, हार्तङ्गी मारूगशीदा ले,
हातरङ्गी मारूगशीद ।
हातरङी मारूगशीद, छातरङ गोनपायाली,
छातरङ से गोनपा ।
छातरङ से गोनपो, कुखरीथू कुरूनङाले,
कुखरीथू कुरूनङ ।
योचालैओ गीङला, रिङबोछे लोतोशाले,
रिङबोहे लोतोश ।
रिङबोहे लोतोश, रोग राङ दैन तोशसाले,
रोग राङदैन तोशस ।
शैनताली शेतोश, कुखरीथू कुरूनङाले,
कुखरीथू कुरूनङ ।
रीनबोछैओ सुनचो, आइतीथङ लानतीगाले,
आइतीथङ लानतग ।
आइतीथङ लानेमो, नागा रापैआतगाले,
नागा रापैआतग ।
नागा रापैआतग, लामठूचो कोमोआले,
लामठूचो कुमो ।
चमराम माशकोतो, डोकचो चाङा नागसाले,
डोकुचो चाङा नागस ।
बुल बुली साङग्यो, गुईनीजा जोमग्योशाली,
गुईनीजा जोमग्यो ।
गुईनीजा जोम-जोम, दुमसाचे लानग्योशाली,
दुमसाचे लानग्योश ।

लोचा रिनबोछे एक परिचय :—किन्नर बौद्ध धर्म के लोग लोचा रिनबोछे को एक अवतारी लामा मानते हैं। उनका विश्वास है कि लोचा रिनबोछे अमर है और वह बार-बार अवतार लेता रहता है। वर्तमान समय में किन्नौर में जो अवतारी लामा है, वह लोचा-रिनबोछे का सातवां जन्म है। लोचा रिनबोछे तृतीय ने सर्व प्रथम किन्नौर में बौद्ध मन्दिरों के निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया था। अवतारी लामा ने किन्नौर में कई स्थानों पर बौद्ध मन्दिर बनवाए जिनमें से कानम्, रिब्बा, नाको और रारङ गांव के बौद्ध मन्दिर प्रमुख हैं, जो आज भी अच्छी स्थिति में हैं। उन्होंने कानम

के बौद्ध मन्दिर में अपने जीवन का अधिकतर समय व्यतीत किया। प्रस्तुत गीत लोचा रिनबोछे तृतीय से सम्बन्धित है।

लोचा रिनबोछे गीत का भावानुवाद : लोचा रिनबोछे का यह ऐतिहासिक गीत बौद्ध धर्म में सबसे पुराना माना जाता है। लोचा रिनबोछे तृतीय के गीत की इन पंक्तियों में लामा के द्वारा रिब्बा में बनाये गये बौद्ध मन्दिर के निर्माण से सम्बन्धित घटनाओं का वर्णन किया गया है। गीत के अनुसार अवतारी लामा ने रिब्बा के बौद्ध मन्दिर का निर्माण एक ही रात में तथा एक ही वृक्ष की लकड़ियों से किया था।

मन्दिर बनाने के पश्चात् लामा का विचार था कि किन्नौर के सारे नागों को इकट्ठा करके रिवाल्सर[1] की झील के मसान वहा भी एक झील बनाई जाए। लेकिन नागों को इकट्ठा करने के क्रम में एक नाग पकड़ में न आ सका। नाग को काबू करते-करते सुबह हो गई और अवतारीलामा का झील बनाने का सपना पूरा न हो सका, इत्यादि।

स्वर लिपि :-

1 2 3	1 2 3	1 2 3	1 2 3
प प —	प — निप	म रे म	— — स
लो चा ऽ	रि ऽ ऽन	बो ऽ छे	ऽ ऽ ऽ
रे — स स	नि — स	रे - रे मम	रे म —
गो ऽन पा	चे ऽ ऽ	जा ऽइ ग्यो	शा लं ऽ
म — रे रे	स — रे	स — स सस	— — स
गो ऽन पा	चे ऽ ऽ	जा ऽङ ग्यो	ऽ ऽ ग

गीत के शेष चरण भी इसी क्रम से गाये जाते हैं।

पोस्ट डाक्ट्रेट फैलो

हि० प्र० विश्व विद्यालय शिमला-5

1. हिमाचल प्रदेश के मण्डी ज़िला में रिवाल्सर नाम की एक झील है। जिसके किन्नारे बौद्ध मन्दिर बना है बौद्ध धर्म के लोग इसे अपना तीर्थ स्थान मानते हैं। बौद्ध धर्म के साथ-साथ हिन्दू धर्म के लोगों का भी यह तीर्थ स्थान है।

सुबाथु जनपद एवं धार्मिक आस्था

O नरेन्द्र अरुण

युग बीत जाते हैं और पीछे छोड़ जाते हैं स्मृति चिन्हों के अवशेष, जिन के भीतर हमारे सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के अनमोल मोती ऐतिहासिक तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में जगमगाते रहते हैं। धर्म एवं संस्कृति के सामाजिक प्रारूप काल के अंतराल में प्रेरणास्त्रोतों के स्मारकों का स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं तथाकथित स्त्रोत चाहे धार्मिक हैं अथवा सामाजिक नीले नेत्र को बेंधते हुए गौरव से अपना मस्तक उठाए अपना स्वर्णिम अतीत दुहराते रहते हैं। अतीत के झरोखों से झांकती हुई ऐसी ही गौरवमयी गाथा सुबाथु और उसके जनपद से सम्बद्ध है।

सुबाथु जिसे मिल्ट्री छावनी होने का सौभाग्य प्राप्त है शिमला, कसौली, धर्मपुर, कुनिहार एवं कुठाड़ प्रदेश के लगभग मध्य में 3500 फुट की ऊंचाई पर स्थित है। सुबाथु एक साफ सुथरी एवं मनभावनी छावनी है, जिसके साथ कुछ ऐतिहासिक तथ्यों के बहुमूल्य क्षण अपना स्वर्णिम इतिहास दुहराते हुए दिखाई देते हैं। जनश्रुति, जनमत, दंतकथाओं एवं ऐतिहासिक घटनाओं के उपक्रम के आधार पर सन् 1813 में लैफ्टिनैंट कर्नल रोज़ ने सुबाथु में पहली गोरखा यूनिट की स्थापना की। इस स्थापना के साथ नेपाली गोरखों की वीर गाथाओं का इतिहास जुड़ा हुआ है।

व्यापारी अंग्रेज कालान्तर में शासक बना। भारतीय जनपद गुलामी की जंजीरों में जकड़ा गया। लगभग सभी भारतवासियों ने साम्प्रदायिकता को तिलांजलि देकर कन्धे से कन्धा मिलाया और फिरंगियों से टक्कर ली। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर जनश्रुति एवं कपोलकल्पित व्याख्याओं को स्वीकार किया जा सकता है। नेपाली गोरखों ने फिरंगियों का डटकर मुकाबला किया और नेपाल से लेकर हिमाचल की तराई तक वे फिरंगियों से ऐसे चिपटे रहे जैसे गेहूं के साथ घुन किन्तु आस्था और दृढ़ विश्वास की चट्टान ने गोरखों को अलग-अलग रूपहला इतिहास संजोने में सहायता प्रदान की। संक्षिप्त एवं सूक्ष्म विवेचन के अनुसार ब्रिटिश साम्राज्य के मेजर जनरल अखतर लोनी 6000 सिपाहियों को लेकर सतलुज एवं व्यास की ओर बढ़े, मेजर जनरल हिलैस्ती 4000 सेना के साथ देहरादून गढ़वाल की तराइयों में झक मारते एवं संघर्षों से जूझते रहे। मेजर जनरल उड़की की चार हजार सैनिक शक्ति नेपाल की तराई में घोड़ों और तोपों को प्रयोग में लाती रही, बिहार नकवानपुर क्षेत्र मेजर जनरल मारले के हवाले हुआ।

पूर्विय (बिहार) आसाम और नेपाल में मेजर नेट लड़ते रहे। किन्तु विशिष्ट महत्व एवं गौरव की बात तो यह थी कि गोरखों की मुट्ठी भर सेना से जिसमें लगभग 3000 जवान थे, अंग्रेजों को समय-समय पर छकाते रहे। जनरल बलभद्र थापा मकवानपुर बिहार में 600 सिपाहियों के साथ लड़ा। अमर सिंह थापा और उसके 600 सिपाहियों ने सतलुज एवं व्यास के आसपास के क्षेत्रों में अंग्रेजों से टक्कर ली, मैक्रे थापा 800 सैनिकों के साथ गढ़वाल नैनीताल में इतिहास के अमर आख्यानों को जन्म देते रहे। रणवीर सिंह थापा नेपाल की राजधानी काठमाण्डू की सुरक्षा में रत रहे। इतिहास के समस्त आंकड़ों के अनुसार अधिकांश नेपाली योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए। अंग्रेजों को भी अनेक स्थानों पर मुंह की खानी पड़ी। 70 वर्षीय योद्धा वयोवृद्ध मैक्रे थापा का बलिदान आज भी हमारे वीरजवानों के लिए प्रेरणा का स्त्रोत है।

थापा अमर सिंह सेनानायक की वीर गाथा सुबाथु के लिए अपना विशिष्ट महत्व रखती है। सतयुग के अमरदास की सारी सेना लड़ते–लड़ते वीर गति को प्राप्त हुई। अमर सिंह ने कुछ शर्तों के आधार पर आत्मसमर्पण करके महाराणा के ऐतिहासिक किले में अंग्रेजों से सन्धि की जिसके आधार पर सुबाथु में प्रथम गोरखा राईफल के स्वर्णिम इतिहास का सूर्योदय हुआ। धीरे-धीरे सुबाथु छावनी का विकास हुआ और आज परम्परागत प्रेरणात्मक आख्यानों को समेटे हुए सुबाथु का प्रत्येक कण यहां की बहादुरी की गाथाओं का मधुमय संगीत अलापता दिखाई देता है तथा-कथित संगीत की मधुरफुहार मां भगवती के मनमोहक विशालकाय मन्दिर से फूट पड़ती है। वास्तव में यही मन्दिर प्रेरणा का मूल उद्गम है, गोरखों का पावन तीर्थ धर्म एवं संस्कृति का ज्वलन्त प्रतीक है। सुबाथु में वैसे तो प्रेरणा स्त्रोतों की कमी नहीं, महाकाली का पुराना मन्दिर, ठाकुर द्वारा मन्दिर, महर्षि बाल्मीकि, गुगा माड़ी मन्दिर आदि अनेक संस्थान अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं किन्तु भगवती मां के नवनिर्मित मन्दिर की तो बात कुछ और ही है। यह मन्दिर कैसे अस्तित्व में आया, इसके पीछे क्या मूल प्रेरणा कार्य करती रही, इसका कथानक प्रस्तुत करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूं।

सुबाथु बस स्टैण्ड पर उतरने के पश्चात् आप लगभग 50 कदम दक्षिण और फिर तीस कदम पश्चिम की ओर चलें तो आप को धर्मपुर-कुनिहार जाने वाली सड़क मिलेगी। तनिक बायीं ओर मुड़िए और धर्मपुर की ओर चलना प्रारम्भ कर दीजिए। आप को दायीं ओर सुबाथु का सैनिक परेड ग्राऊण्ड मिलेगा। दायीं ओर तथा बाईं ओर सुन्दर-सुन्दर पुष्पों की क्यारियां मन को मोहती हैं। बायीं ओर ठाकुरद्वारे मन्दिर का कलश चमकता हुआ मन को मोह लेगा। तनिक और आगे बढ़िए बायीं ओर सैनिकों का खोखरी सिनेमा तथा दायीं ओर रेकरूट बैरेक्स। चालीस-पचास कदम आगे चलने पर एक साईन बोर्ड दिखाई देगा जिस पर लिखा होगा 'मन्दिर मार्ग'। अब यदि तनिक गर्दन आसमान की ओर उठाएं तो मां भगवती के मन्दिर के पार्श्व भाग का एक गुम्बद नील गगनसे बातें करता हुआ दिखाई देगा। मन्दिर में पुता पीला तथा गेरुआ रगं मन को भाता है। पूर्व दिशा की ओर बांए से आप ज्यों-ज्यों मन्दिर के समीप पहुंचते जाएंगे त्यों-त्यों भवन का बाह्य सौन्दर्य नयनाभिराम लगने लगेगा। आने जाने वाले मार्ग को छोड़कर बायीं ओर पहाड़ी पर एक छोटा

सा भवन किस आस्तिक नास्तिक अथवा पाषाण हृदय प्राणी तक को अपने हृदय में नहीं समेट लेता है ।

मन्दिर में प्रवेश पाने से पूर्व आपको तोरण द्वार से गुजरना होगा । लगभग 20-25 फुट ऊचां बना तोरण द्वार ही मानो मूल प्रेरणा का उद्गम है । द्वार पर सर्वोपरि मध्यभाग में बने कमल से हमें विष्णु शैया का स्मरण ही नहीं होता अपितु जीवन में प्रतिपल विघ्न बाधाओं के होते हुए भी मुस्कानों का सन्देश छोड़ जाते हैं । कमल के ठीक नीचे बना है वीर चक्र – अशोक चिन्ह प्रतीक जो हमारे दिन दैन्य जीवन में निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करता है । तोरण द्वार के दायें बाएं ऊपर-नीचे नज़रों के घोड़े दौड़ाईए और हतप्रभ से होकर रह जाईए क्योंकि बहुरगीं दुर्गा मां की सभी आकृतियां आप को अपनी ओर आकृष्ट किए बिना नहीं रह पाएंगी । मां भवानी के मध्यस्थ क्रमशः शैल पुत्री, चन्द्रघण्टा, स्कन्दमाता कालरात्रि, ब्रह्मचारिणी, कृष्णामाता, कात्यायनी और महालक्ष्मी की मूर्तियों का दर्शनलाभ आपको तोरण द्वार प्रवेश से पूर्व ही हो जाएगा । तोरण द्वार की कलात्मक और साज सज्जा को आधुनिक मूर्तिकला का उत्कृष्ट नमूना कहा जा सकता है ।

हम विश्वास से कह सकते हैं कि तोरण द्वार की प्रथम प्रविष्टि आप को प्रभावित करती और आप के हृदय पटल पर यादों के पैनेनश्तर छोड़ती हुई चली जाएगी । अब तोरण द्वार से आगे निकलिए सुन्दर स्वच्छ एवं मनमोहक वाटिका के प्रारूप को देख कर मन्त्रमुग्ध से हो कर ठगे-ठगे से रह जाइए । वाटिका-प्रागंण में नन्हें-नन्हें रगं-बिरंगे कोमल-किसलय वाले फूल हंसते हुए दिखाई देते हैं । मंद-समीर के झोकों से अभिनन्दन करते हुए फूल हमारा आतिथ्य सत्कार करते हुए से लगते हैं । मन्दिर का प्रांगण संकीर्ण होते हुए भी स्वच्छ, पुष्पित एवं सुवासित है ।

भवन के मूल द्वार पर पहुंचते ही आपकी पीड़ाओं का समूल नाश हो जाएगा । यदि आप दांए बांए नज़र घुमाएं तो संगमरमरी शिलान्यासों पर आप को ऐतिहासिक तथ्यों के हस्ताक्षर उपलब्ध होंगे । मेजर जनरल एस० के० करोला, पी० बी० एस० डी० ओ०, एम० सी० कर्नल फर्स्ट गोरखा रैजिमैन्ट के द्वारा किया गया शिलान्यास आषाढ़ 26 गते सम्वत् 2030 तदनुसार 9 जुलाई, 1973 की पुण्य तिथि की याद दिलाता है । मां भगवती के भवन के निर्माण कार्य के पीछे 14 गोरखा ट्रेनिंग–सैन्टर फर्स्ट गोरखा पलाटून आल जे० सी० ओज तथा कर्नल शिवाजी डी० भोंसले एवं सूबेदार मेज़र हर्ष बहादुर गुरंङ का विशेष हाथ रहा । ऐसा विशवास किया जाता है कि सर्वप्रथम भवन का निर्माण केवल प्रशिक्षणार्थियों को प्रेरणात्मक भावनाओं की उर्जा प्रदान करने हेतु किया गया था किन्तु भोंसले के मस्तिष्क ने प्रमाणित कर दिया कि देश पर हसंते-हसंते मर मिटने वालों के लिए मां भगवती, मां भवानी के स्वरूप से अधिक महत्वपूर्ण और क्या हो सकता है ? सम्भवतः तभी उन्होंने बहुमूल्य समय का सदुपयोग करते हुए मां भगवती की अष्टधातु की बनी तीन मन वज़नी, चार फुट ऊंची, पौने तीन फुट चौड़ी मूर्ति की विधिवत स्थापना कर डाली ।

मुख्य द्वार से प्रवेश करने के पश्चात् ही आप मां के मूल भवन में जाकर दर्शन कर अपने जीवन को सफल बना सकेंगे। खुला-डुला मन्दिर उस पर चिकने चक्कों वाला रगं-बिरंगा फर्श, बिछी हुई टाट, दीवारों पर लटके हुए सांस्कृतिक चित्र एवं संस्कृत हिन्दी के प्रेरणादायक श्लोक बस देखते और पढ़ते बनते हैं। तनिक इन चित्रों को देखिए कहीं कृष्ण अर्जुन को गीता का बहुमूल्य उपदेश देते हुए दिखाई देगें तो कहीं राधा कृष्ण की प्रणय लीला में आप स्वयं डूब जाएंगे कहीं रामचन्द्र जी के स्मृति चित्र, राम राज्य के सपने बिखेरते हुए मिलेगें तो कहीं राम लक्ष्मण अपने गुरु विश्वामित्र की सेवा में लीन दिखाई देगें। किसी चित्र पर आपको अभिमन्यु द्वारा चक्र-व्यूह तोड़ने का दृश्य भी देखने को मिलेगा। इन सभी चित्रों का अर्थ मूलप्रेरणा की अमर ज्योति को उजागर करना है। इन सभी चित्रों से सर्वाधिक आकर्षक एवं प्रभावित करने वाला चित्र प्रवेशद्वार के पार्श्व भाग में ऊपर लटका है। जिसमें मां भवानी महाराणा शिवा को अपनी खड़्ग प्रदान करती हुई दिखाई गई है।

इन चित्रों के गहनमनन और अध्ययन से कौन सा ऐसा वीर जवान होगा जिसकी नसों में बहादुरी का जोश नहीं उमड़ेगा? कौन सा ऐसा कठोर हृदय होगा जो इन्हें देखकर अपने देश पर मर मिटने की कस्म नहीं खाता होगा इतना ही नहीं, इन चित्रों के पास विभिन्न श्लोकों के माध्यम से भी प्रेरणा की अनुपम ज्योति सदा ही जलती रहेगी। इन दोहों तथा श्लोकों के उद्गम स्त्रोत भगवत् गीता, रामचरितमानस, कबीर की साखियां तथा लोक कवियों द्वारा प्रस्तुत उद्गार व्यक्त किए गए लगते हैं। इन दोहों में कहीं पर मां भगवती की पूजा की झंकार सुनाई देगी तो कहीं कर्त्तव्य परायणता पर मर मिटने का पाठ होगा। कहीं गीता का आत्मबोध जीवन दर्शन होगा तो कहीं गोरखों की खुखरी के शौर्य में भी अपने धर्म, संस्कृति और समाज के विकास की बात कही गई होगी, किन्तु इनका लाभ वही सूरमा उठा सकता है जो इनसे सेवा भाव स्थापित करने तथा अनन्त मूल प्रेरणा-ग्रहणोपरान्त अपने कर्तव्य को निभाने का अटल प्रण ले।

मां भगवती के भीतरी भवन का दृश्य हृदय के भीतर पौराणिक आख्यानों एवं स्वर्णिम अतीत के पन्नों को बड़ी तीव्र गति से उलटता हुआ अनजानी दिशा में कहीं लुप्त हो जाता है और दर्शक की आंखें सामने चौकी पर गड़ी मां भगवती की विशाल अष्टभुजी मनभावक, मन-मोहक अष्टधातु से बनी मूर्ति पर टिकी रह जाती है। वाहनारुढ़ मां भगवती की अष्टभुजी मूर्ति के करों में, रक्त पुष्प, त्रिशूल, तलवार, चक्र, शंख, गदा धनुवणि एवं कमल पुष्प लिए वरद् कर से भक्तों को शुभ आशीर्वाद प्रदान करती हुई सुसज्जित पवित्र काण्ठ मन्दिर में चबूतरों पर विराजमान है। चरणों पर बिखरे रक्तिम पुष्प, दाएं बाएं पीपल के चमकीले दीप स्तम्भ दायीं ओर चौकी पर विराजमान नारियल सहित कलश उठाए मां भगवती के शीश पर सुशोभित चांदी का छत्र उस पर बाहिर की ओर लटकता हुआ पीतल का घण्टा, बाईं ओर चांदी की मूठ में गड़ी हुई श्वेत चंवर के साथ बंदूक, खुखरी, तलवार खण्डे, मानो मां भगवती का और भी निराला स्वरुप प्रस्तुत करते हुए सुशोभित हैं।

मां भगवती के पावन मन्दिर की सेवा करने के लिए प्रबन्ध हेतु यहां के सेवा के कमांडिग और डिप्टी कमांडिग आफिसर जिम्मेदार होते हैं। सेना की ओर से व्यवस्था के लिए चार सेवादार नियुक्त किए जाते हैं जो मन्दिर की सफाई एवं व्यवस्था को सुचारू ढंग से निपटाते हैं। मन्दिर लगभग सभी सैनिक तथा असैनिक श्रद्धालुओं के लिए खुला है। मन्दिर में दो बार आरती की व्यवस्था है। मन्दिर प्रातः से सायं तक दर्शनार्थ खुला रहता है।

मन्दिर के पूज्य गुरु से पूछने पर पता चला कि यहां पर दशहरा, दीपावली, जन्माष्टमी, बसन्त पंचमी, होली तथा शिवरात्रि के सांस्कृतिक पर्व बड़ी धूमधाम एवं उत्साह से मनाए जाते हैं। इन सभी पर्वों में दशहरे के महोत्सव का मां भगवती के मन्दिर से घनिष्ट सम्बन्ध है।

शीतकालीन नवरात्रों के आने से पूर्व ही यहां के श्रद्धालुओं में दशहरा महोत्सव झूमने लगता है। महीनों पूर्व तैयारियां आरम्भ होने लगती हैं। प्रतीक्षा के क्षण बीत जाते हैं और प्रथम नवरात्रे की पावन बेला अपने शुभ संकेतों सहित आ पहुंचती है। दशहरा वस्तुतः सैनिकों का त्यौहार है। इस महोत्सव में सुबाथु की गोरखा युनिट का विशेष हाथ रहता है। प्रथम नवरात्रे के दिन मां भगवती दुर्गा की उपासना प्रारम्भ हो जाती है। तदपश्चात् ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघंटा, कुषमांडा, स्कन्द माता कात्यानी, महागौरी, महाकाली, सिद्धिक्षत्री की विशिष्ट पूजाएं इन्हीं नवरात्रों के मध्य सम्पूर्ण की जाती हैं तथा दसवें दिन विजयदशमी का त्यौहार अपने पूर्ण यौवन पर होता है। इन सभी पावन पर्वों में शैलपुत्री के समक्ष बलि के उपरान्त क्रमशः प्रतिदिन बलियों का भोग मां भगवती के लिए अनिवार्य होता है। तत्पश्चात् मां भगवती दुर्गा के सम्पूर्ण पाठ नौ दिन तक क्रमशः चलते रहते हैं। मां भगवती की अखण्ड ज्योति निरन्तर नौ दिन तक जगमगाती रहती है। सातवें नवरात्रे को सेना के सारे नवजवान, मां सरस्वती के आह्वान पर पूरी सेना के साथ परिक्रमा करने के उपरान्त सरस्वती मां को सम्मान प्रदान करते हैं। आठवें दिन काली पूजनचक्र विशिष्ट महत्व का दिन होता है। इसी दिन ठीक 12 बजे महिषासुर वध का दृश्य भी देखने को मिलता है। यदि दुर्भाग्यवश एक ही बार में भैंसे की गर्दन न कटे तो इसे आने वाले वर्ष के लिए दुर्भाग्य का संकेत समझा जाता है। यदि उपासक एक बार में भैंसे की गर्दन धड़ से जुदा न कर सके तो उपासक के मुख पर भैंसे का रक्त पोत कर सारे मेले में घुमाते हुए रोष व्यक्त करते हैं। प्रायः ऐसी दुर्घटना कम ही होती है। मूलतः वीर नेपाली सैनिक उपासक एक ही बार में महिषासुर का वध करने में सफल हो जाते हैं। अष्टमी के दिन ही काल रात्रि जागरण में चामुण्डा के नाम पर बलियां दी जाती हैं। बलियों का यह उपक्रम रात्रि को ठीक 12 बजे सम्पन्न होता है। दशमी पूजन के दिन सैनिक अस्त्र-शास्त्रों की विशिष्ट पूजा की जाती है।

नवरात्रों के सम्पूर्ण त्यौहार को मनाने का श्रेय यहां के प्रमुख रिलिजियस टीचर को होता है। समस्त नवरात्रों में नवदुर्गा की विधिवत स्थापना से लेकर विजयदशमी के अन्तिम पर्व

तक समस्त पर्व का यश रिलिजियस टीचर अथवा राजगुरु सूबेदार मेजर श्रीयुत् कृष्ण देव शर्मा को उपलब्ध होता है। धर्म और संस्कृति की सौम्यमूर्ति कृष्ण देव शर्मा द्वारा ही मुझे मां भगवती एवं सुबाथु जनपद की ऐतिहासिक पृष्ट भूमि की जानकारी मिली। इनका मनमोहक सौम्य स्वभाव वास्तव में ही आकर्षक है जो किसी भी श्रद्धालु के मानस पटल पर अपने दैवी गुणों की अमिट छाप छोड़ने में समर्थ है।

परम्परागत धर्म एवं संस्कृति के पुजारी सुबाथु के लोग अटल विश्वास एवं अमिट आस्था के बलबूते पर अपनी संस्कृति को जीवित रखने में प्रयत्नशील हैं। होली हो चाहे दीपावली, जन्माष्टमी हो अथवा दशहरा, इनका उत्साह लेशमात्र भी कम नहीं होता। जिस श्रद्धा एवं भक्तिभाव से सुबाथु का सरल हृदय जनपद इन तीज त्यौहारों में अपना हाथ बटांता है वह तो देखते ही बनता है। हिमाचल प्रदेश को ऐसे जनपदों पर गर्व है जो अपनी कला, संस्कृति एवं धर्म की सुरक्षा के लिए आज भी निःस्वार्थ भाव से सेवा में लीन होकर धर्म एवं संस्कृति के क्षेत्र में अधुनातन अध्याय जोड़ने में संलग्न हैं।

राजकीय महाविद्यालय
सरस्वती नगर साबडा,
जिला शिमला, (हि०प्र०)

अकादमी के तत्वाधान में नाटक 'टाईपिस्ट' का एक दृश्य, निर्देशन, अशोक हंस, कलाकार भूपेन्द्र शर्मा और अंजु बाला

राजा रघुनाथ सिंह रईस गुलेर

O डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा

अतीत काल से कांगड़ा जनपद के पहाड़ों में बसी हिन्दू जाति अपने हिन्दू राजाओं के शासन में रहती रही है। इन छोटी-छोटी रियासतों में सबसे प्राचीन और प्रमुखतम कांगड़ा भी रियासत थी। जनश्रुतियों के अनुसार कांगड़ा का कटोच राजवंश मानव जात नहीं है। इस वंश के संस्थापक राजा भूमि चन्द कांगड़ा की देवी बज्रेश्वरी के ओज-पसीने से यौवनावस्था में पैदा हुए थे। आज तक इस वंश परम्परा में पांच सौ से भी अधिक राजा हो चुके हैं। इस राज्य का प्राचीनतम नाम 'त्रिगर्त' था। संम्भवतः इसका नाम इसलिए रखा गया होगा कि इस राजवंश को महाभारत में वर्णित त्रिगर्त राजवंश से मिलाया जाए। यह राजवंश महाभारत काल से भी पुराना है। महाभारत में वर्णित त्रिगर्त राजा सुशर्मचन्द इस राज वंश की २३३वीं पीढ़ी के राजा थे। इसका त्रिगर्त नाम भौगोलिक आधार पर है। चार नदियों का मध्यवर्ती या धवलगिरि से नीचे की ओर स्थित चार पहाड़ियों का मध्यवर्ती भाग त्रिगर्त कहलाता है।

ईसा से तीन सौ वर्ष पूर्व सिकन्दर महान् के इतिहासकारों ने भी पंजाब की उत्तर दिशा में वर्तमान पहाड़ी राजाओं का सविस्तार वर्णन किया है और फरिश्ता ने जहां कन्नौज के एक राजा द्वारा कुमाऊं से काश्मीर तक के क्षेत्र को विभाजित कर छोटे-छोटे पाँच राजाओं को अधीन करने का वर्णन किया है, वहां कोट (कांगड़ा) के राजा का भी उल्लेख किया है। विश्वसनीय ऐतिहासिक घटनाओं से विदित होता है कि इस प्रतापी राजा का समय सम्वत् 20 विक्रम रहा होगा और यह आज से 2040 वर्ष पूर्व रहा होगा। इस राजवंश की बहुत सी शाखाओं का एक बड़े क्षेत्र में आबाद होना भी इसकी प्राचीनता का प्रमाण है। सतलुज से रावी नदी तक के पर्वतीय क्षेत्र में शायद ही कोई प्रसिद्ध राजपूत गोत्र ऐसा होगा जो अपने को 'कटोच' न बताता हो। असल कटोच वंश से तो जसवां, सीबा, हरिपुर, दातारपुर, ये चार स्वतन्त्र रियासतें स्थापित हुई हैं। 'छादो' राजपूत और इनके सात 'राओं' जो जसवां और ऊना के मध्य जसवां घाटी में रहते हैं, अपने आप को कटोच राजपूत ही प्रकट करते हैं। अन्दौरिया राजपूत जो कांगड़ा की दूसरी सीमा पर आबाद हैं, भी कहते हैं कि उनका पूर्वज भी एक कटोच था, जो कांगड़ा को छोड़कर यहां बसा था। पुराने कागजों में भी कटोच राज्य को शक्ति सम्पन्न राज्य (रियासत) होना लिखा है।

कांगड़ा से हरिपुर रियासत के अलग हो जाने की घटना भी जानने योग्य है। इस घटना को इस वंश से सम्बन्धित सभी राजपूत सही मानते हैं। एक बार कांगड़ा के राजा हरि चन्द मौजा हरसर गुलेर के जंगल जो आज भी अपने विस्तार और विभिन्न प्रकार के शिकार के लिए प्रसिद्ध है, में शिकार कर रहा था कि अचानक ही एक कुएं में जा गिरा। उसे उसके साथी न देख पाए। बहुत ढूंढने पर भी राजा साहिब उन्हें न मिले। यह सोचकर कि कोई हिंसक पशु उन्हें चीर-फाड़ कर खा गया होगा, वे वापिस कांगड़ा को चले गये और मृत व्यक्ति के समान ही उसकी मरणोत्तर क्रियाएं कर दीं। उसके पश्चात उसका छोटा भाई कर्म चन्द राजगद्दी पर आसीन हो गया। कुछ दिनों के पश्चात् गडरियों ने उसे कुएं में देखा और उसे बाहर निकाला। जब उनसे राजा ने अपने भाई के राजा बनने का समाचार सुना तो वह हैरान रह गया क्योंकि जनसाधारण ने उसे मृत समझ लिया था और भाई उसके स्थान पर शासक बन बैठा था। यह सोचकर कि अब मेरे जाने पर कांगड़ा में हलचल पड़ जाएगी, उसने बड़ी उदारता से परम्परागत राज्य को छोड़ देने का निश्चय किया और बाण गंगा के किनारे गुलेर के सामने हरिपुर में एक अपने नाम का किला बनाकर उसी को एक अलग रियासत की राजधानी बना दिया। इस प्रकार बड़ा भाई एक छोटे शासक के रूप में हरिपुर में शासन करने लगा, जबकि छोटा भाई जो रियासत का अधिकारी नहीं था, वही शासक बन गया।

राजा हरिचन्द के पश्चात् इस राजवंश की छब्बीस पीढ़ियां राज कर चुकी हैं फिर भी इसकी सीमाओं में कोई अन्तर नहीं आया है। अब इस रियासत का क्षेत्र वर्तमान तहसील देहरा के क्षेत्र में आता है। दातारपुर इस रियासत से पृथक होकर जिला होशियारपुर (पंजाब) में मिल गया है और घगोत जो पहले जसवां में शामिल था, इस परगने में मिला दिया गया है। ज़िला कांगड़ा के मानचित्र में जो क्षेत्र तहसील देहरा के अन्तर्गत दर्शाया गया है, वही राजा हरिचन्द के समय हरिपुर रियासत कहलाता था।

इस राजा के परवर्ती इतिहास का अध्ययन करने से मालूम होता है कि जब जम्वाल और मनकोटिया राजाओं ने दिल्ली साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया था तब गुलेर के राजा रूप चन्द ने बागियों को दबाने में सम्राट शाहजहां की सहायता की थी और सम्राट से दो अस्त्र तथा खिलअत फ़ाखरा प्राप्त किये थे। इस सहयोग के लिए शाहजहां ने राजा को 'बहादुर' तथा सम्मान सूचक परिधान भी दिए थे। हरिपुर रियासत के जंगलों में पशु चराने का टैक्स भी इसी कारण नहीं लिया जाता था। सभी कटोच राजा गुलेर के राजा को अपना कुल वृद्ध मानते हैं। कटोच राजाओं के राज तिलक आदि सभी पारम्परिक कृत्य गुलेर के राजा द्वारा सम्पन्न होते थे। प्रतापी राजा मान सिंह भी मुगल सम्राट का कृपा पात्र बनने का इच्छुक हुआ। सम्राट ने इसे कन्धार के अभियान पर भेजा, मगर वह इसमें असफल रहा। राजा बिक्रम सिंह ने औरंगजेब की सेवा स्वीकार कर ली और इसे भी काबुल के सैनिक अभियान पर काबुल भेजा गया और वहीं उसका निधन हो गया। राजा विक्रम सिंह ऐसा बलवान था कि नारियल को भी उंगलियों से दबाकर तोड़ डालता था। गुलेर राजवंश के इतिहास में ये सब घटनाएं लिखी हुई मिलती हैं।

राजा भूप सिंह के शासन काल में सिक्ख शक्ति बलवती होती जा रही थी। उसने कटोचों को जीतकर ख्याति अर्जित की। प्रारम्भ में महाराजा रणजीत सिंह इसका बहुत मान-सम्मान करता था। उसे 'बाबा' कहकर पुकारता था, मगर थोड़े समय के बाद सन् 1812 में महाराजा ने उसका राज्य जिसकी आय 90 हजार रुपया थी, छीन लिया और उसे राज्य से निकाल दिया। उसे चौथाई भाग से भी कम जागीर दी। महाराजा की यह कार्यवाही जिस ढंग से हुई, वह आपत्ति रहित न थी। भूप सिंह के बहुत से स्थानीय सिपाही महाराजा ने अपनी सेना में ले लिये। इसने स्थानीय संघर्ष की आशंका को कम कर दिया और लाहौर में राजा के निवास से यह लाभ प्राप्त किया। इसे धमकी देकर कहा कि अगर तुम पूर्ण रूप से आज्ञा पालन न करोगे तो तुम्हें लाहौर में ही रोक कर रखा जाएगा। विवश होकर राजा ने लाहौर से मुक्ति पाने के लिए उक्त आदेश का पालन किया। स्वतन्त्र होते ही राजा ने राज्य के जब्त होने पर विरोध प्रकट किया और बीस हजार की जागीर लेने से इन्कार कर दिया। इसके पश्चात् यह राशि राजा की रानियों के निवाहार्थ नियत कर दी गई। जब इस रियासत पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया तो भूप सिंह के पुत्र शमशेर सिंह को बीस हजार की जागीर सन् १६२० में बहाल कर दी गयी। इस जागीर में बीस गांव, मुआफी के दो टुकड़े और नन्दपुर तथा हरिपुर के साथ लगते तीन बाग थे। इस जागीर की आय का अनुमान लगभग बीस हजार सात सौ ग्यारह रुपये था। सुरा आदि पर कर लगाने का अधिकार भी राजा को दिया गया।

शमशेर सिंह कांगड़ा के पुराने रईसों में अन्तिम रईस था। यह इमानदारी और सदाचार में प्रसिद्ध था। इसने सिक्खों की पहली लड़ाई में अपने नौकरों को एकत्र करके हरिपुर जो एक राज्य में सुरक्षित स्थान था, से सिक्खों को निकाल दिया। राजपूत रईसों को इससे निराश होना पड़ा क्योंकि वह सोचते थे कि महाराजा रणजीत सिंह कि लालसा से जो अपमान हुआ है, अंग्रेज़ी राज में भी उससे मुक्ति नहीं मिलेगी। शमशेर सिंह भी उस समय इस निराशा से ग्रस्त था फिर भी वह प्रकटतः अंग्रेजी सरकार का वफादार बना रहा और उसके सम्बन्धियों ने अंग्रेजी राज्य में मिलने के थोड़े समय बाद ही जो विद्रोह किया था। उसमें उनकी सहायता देने से इन्कार कर दिया। सन् १८५७ में यह निःसन्तान मर गया। और कोई विधवा रानी भी पीछे न रही। सन् १८५३ में जागीर सम्बन्धी प्रमाणपत्र में यह नहीं लिखा था कि यह जागीर इसके पितामह (बाबा) की सन्तान को मिलेगी, अतः सरकार ने इसे जब्त कर लिया, मगर फिर भी सरकार ने कृपा करके यह जागीर इसके भाई जयसिंह तथा उसके वैध पुरुष वंशज को निम्न शर्तों पर दे दीः- यह केवल जागीरदार ही स्वीकार किया जायेगा। इस को सुरा आदि नशीले पदार्थों पर कर लगाने का अधिकार न होगा। यह पुलिस और न्याय सम्बन्धी अधिकारों की मांग न करेगा।

सन् १८७८ में जयसिंह को सम्मान स्वरूप राजा की उपाधि दी गई। उसके समय में रियासत बड़े संकट में फंस गई थी। उस पर ऋण का काफी बोझ हो गया था, अतः सरकार

ने उसकी मृत्यु से कुछ समय पूर्व छः प्रतिशत सूद पर उसे छयासी हजार रुपये ऋण देकर उसे ऋण से मुक्ति कराया। वर्ष में छः-छः हजार की दो किश्तें देनी भी नियत की। सन् १८८४ में राजा जहसिंह के निधन होने पर उसका पुत्र रघुनाथ उसका उत्तराधिकारी बना। वह सुपठित व्यक्ति था। कहने को तो इस जागीर की आय इक्कीस हजार रुपये थी, मगर एक तिहाई के लगभग और प्राप्त किया जाता था। वायसराय के दरबार में कांगड़ा के राजाओं में उनका प्रथम स्थान था। उसकी बहन का विवाह मण्डी के तत्कालीन राजा से हुआ था। कटोच राजवंश में उस समय निम्नलिखित राजाओं की गणना होती थी, राजा रघुनाथ सिंह गुलेरिया, राजा जयसिंह, रईस लम्बा ग्राम, राजा जयचन्द, रईस सीबा, राजा नरेन्द्र चन्द, रईस नादौन। गुलेरिया, स्यूहिया, डढ़वाल जसवाल, आदि इसी वंश की शाखाएं थी।

राजा रघुनाथ सिंह का टिक्का बलदेव सिंह सुशिक्षा को प्राप्त था। उसने एचिसन कालेज लाहौर में शिक्षा प्राप्त की थी। उसका विवाह गढ़वाल से हुआ था, तथा उसकी दोनों बहनों का विवाह टिक्का साहिब जुब्बल से हुआ।

अध्यक्ष,
यशपाल साहित्य परिषद नादौन,
जिला हमीरपुर, (हि० प्र०) 177033

विजट देवता मन्दिर–बरायला (राजगढ़)

O बालक राम जसवाल

राजगढ़ से लगभग 25 किलोमीटर की दूरी पर बरायला गांव में ऊंची पहाड़ी पर ये मन्दिर लगभग 500-600 वर्षों से स्थित है। ये मन्दिर ज़िला सिरमौर के प्रसिद्ध मन्दिरों में से एक है। ये इकट्ठे दो मन्दिर हैं। एक को शाठी कहा जाता है तथा दूसरे को पाशी। इससे प्रतीत होता है कि ये मंदिर अवश्य ही कौरवों पाण्डवों से जुड़े हुए होंगे।

दोनों मन्दिर एक ही प्रकार से बने हुए हैं तथा केवल विजट देवता के मन्दिर के नाम से जाने जाते हैं। मुख्य मन्दिर केवल एक ही है जिसमें मूर्तियां इत्यादि स्थापित है। ये मन्दिर छः-छः मंजिलों के हैं तथा एक दूसरे के साथ-साथ खड़े हैं। मन्दिरों का आकार गोल नहीं है बल्कि वर्गाकार रूप में बने हुए हैं।

पाशी मन्दिर का विशेष महत्व है।इसमें छः मंजिले हैं। पहलीतीन मंजिलों में कोई नहीं जाता। इसका प्रवेश द्वार भी तीसरी मंजिल पर है जिसमें सीढ़ी लगाकर चढ़ना पड़ता है। जहां तीसरी मंजिल पर प्रवेश द्वार है उस द्वार पर श्रद्धालुओं ने विभिन्न प्रकार के प्राचीन सिक्के जड़े हुए है ये सिक्के चांदी, पीतल व तांबा इत्यादि धातुओं के हैं तथा इनमें से कुछेक तो सौ वर्ष से भी अधिक प्राचीन हैं जोकि अब प्रचलन में नहीं हैं। प्रवेश द्वार में बैठकर अन्दर जाना पड़ता है।

मूर्तियां व साज सज्जा :- विजट देवता के इस मन्दिर में 24 बड़ी-बड़ी अष्टधातु की चमकीली मूर्तियां स्थापित की गई हैं। मूर्तियां भी उतनी ही पुरानी है जितना मन्दिर। मुख्य मूर्ति विजट देवता (शिवजी), की है जो मूर्तियों के मध्य में रखी गई है। शेष मूर्तियां भी विजट देवता के विविध रूप हैं जो कि मुख्य मूर्ति के दोनों ओर लाईन में रखी गई हैं। इसके अतिरिक्त पापड़े व अन्य देवताओं की मूर्तियां भी रखी गई हैं। पूजा करने की घन्टियां इत्यादि भी हैं जोकि पीतल व कांसे की है। मन्दिर का पूजा विधान बड़ा विचित्र है।

पूजा के समय ढोल, नगारे, करनाल इत्यादि बजाये जाते हैं। ये वाद्य-यन्त्र तांबे के बनाये गये हैं। पूजा के लिए केवल शुद्ध देसी घी ही प्रयोग में लाया जाता है जोकि सारे गांव के लोगों द्वारा हर साल इकटठा किया जाता है। प्रसाद के लिए चावल, अखरोट हर समय मन्दिर में रखे जाते हैं। ये प्रसाद भी श्रद्धालुओं द्वारा समय-समय पर चढ़ाया जाता है तथा कोई भी सामग्री बाजार

से नहीं खरीदी जाती । पूजा करते समय जो आग जलाई जाती है उसके बुझे हुए कोयले को फैंका नहीं जाता, बल्कि उन कोयलों को एक बहुत बड़े घड़े में तीसरी मंजिल में भण्डारण करके रखा जाता है । ये घड़ा असाधारण किस्म का है । मन्दिर का पुजारी तथा ढोल वादक वंशानुगत होता है ।

जब कोई श्रद्धालु देवते को बकरा चढ़ाता है तो उसे सम्पूर्ण विधि विधान से मन्दिर की तीसरी मंजिल में ले जाकर काटा जाता है । काट कर बकरे को नीचे धरती पर फैंक दिया जाता है । बकरे का कटा हुआ सिर मन्दिर के पण्डित-पुजारी को दिया जाता है जिसे स्थानीय भाषा में घणीता (घेला) कहा जाता है । बकरे की टांगे बाजा बजाने वाले (ढोलक वादक) को दी जाती हैं । ये विधान अतीत से चला आ रहा है ।

चढ़ावा :—इस मन्दिर में काफी चढ़ावा आता है । दूर-दूर से लोग श्रद्धावश इस मन्दिर में अपनी-अपनी मनोकामनायें पूरी करवाने के लिए आते हैं । चढ़ावे में रूपये, पैसे, घी, सोना-चांदी के आभूषण, मक्की, बाथू, चावल, अखरोट, बकरे, खाडू इत्यादि चढ़ाते हैं । चढ़ावे की सामग्री मन्दिर के पुजारी के पास संचित होती है । सोने-चांदी-पैसे के अतिरिक्त जो अनाज का चढ़ावा होता है उसे दूसरे ठाठी मन्दिर में संचित करके रखा जाता है । ये अन्न कई वर्षों तक इसी मन्दिर में रखा जाता है परन्तु फिर भी खराब नहीं होता । इस अन्न का प्रयोग लोगों के लिए उस समय दिया जाता था जब कभी अकाल पड़ता था या अनावृष्टि के कारण फसल खराब हो जाती थी । अभी भी इस मन्दिर में चढ़ावे का काफी अन्न भण्डारित किया गया है । जिस मन्दिर में यह भण्डारण है उसमें नीचे कोई दरवाजा नहीं है तथा चारों ओर से पत्थरों की चिनाई से बन्द है । इस मन्दिर में लगभग 25 फुट की ऊंचाई पर दीवार के एक ओर एक खिड़कीनुमा दरवाजा है जिसके माध्यम से अन्दर या बाहर आया जाया जाता है । यह इस मन्दिर की विशेषता है ।

मेले : वैसे तो सारा साल ही यात्री इस मन्दिर में अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए चले रहते हैं परन्तु भैया-दूज के दिन यहां काफी बड़ा मेला लगता है । हर तीसरे वर्ष यहां एक बड़ा मेला लगता है जो ज्येष्ठ के महीने में आयोजित किया जाता है । इस मेले का मुख्य आकर्षक 'ठोडा' खेल है जिसमें आस-पास के गांवों की ठोडा पार्टियां भाग लेती हैं । इसके अतिरिक्त बजरी (ओलावृष्टि) के बचाव के लिए भी हर वर्ष मेला लगता है । इसमें बिजट देवता को बकरा चढ़ाया जाता है जिसे स्थानीय भाषा में "श्राड़" कहा जाता है । इस मेले का आयोजन करते समय लोगों को पूरा विश्वास होता है कि देवता प्रसन्न होकर मौसम में परिवर्तन कर देगा । देवते को बकरे चढ़ाने के पश्चात् उसके सींग मन्दिर के बाहर चिपका दिये जाते हैं । मन्दिर के प्रांगण में बहुत बड़ा हवन कुण्ड भी विद्यमान है ।

देवते की यात्रा : प्रत्येक वर्ष बिजट देवता की मुख्य मूर्ति पारम्परिक ढंग से चूड़धार ले जाई जाती है । चूड़धार (सिरमौर) में शिवजी का मुख्य प्रसिद्ध मंदिर है । इस यात्रा में आस-पास

सभी गांव के लोग तीन-चार दिनों तक देवते की यात्रा करते हैं जिसे स्थानीय भाषा में जात्तर कहा जाता है। इस यात्रा में मुख्य मूर्ति के साथ उसके एक तरफ रखी जाने वाली मूर्ति एक वर्ष तथा दूसरी तरफ रखी जाने वाली मूर्ति दूसरे वर्ष यात्रा में ले जाई जाती हैं। यात्रा में देवते के सारे वाद्य यन्त्र बजाते हुए साथ ले जाये जाते हैं। ये यात्रा तीन दिनों की होती है। इस यात्रा में तीन बकरे भी साथ ले जाये जाते हैं। दो बकरे रास्ते में काट कर जात्तर में गए हुए यात्रियों, श्रद्धालुओं को देवते के नाम पर खिला दिये जाते हैं। जब ऊपर चूड़धार यात्रा पहुंच जाती है तो देवते को नहलाया जाता है। और तीसरा बकरा भी काट दिया जाता है यह जात्तर हर वर्ष सर्दी शुरु होने से पूर्व की जाती है। इस यात्रा में भाग लेना बहुत पवित्र कार्य समझा जाता है। इस प्रकार तीन दिनों तक चलने वाली ये यात्रा समाप्त होती है।

देवते के जन्म से लेकर आज तक की गाथा गाई जाती है। देवगाथायें गाने वाले सर्व-श्री शोभा राम, महाठा राम, लाटू, साधु तथा कुन्दन सिंह इत्यादि हैं जो बरायला गांव के ही हैं। इस प्रकार उक्त तथ्यों के अनुसार इस मन्दिर का ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व बहुत अधिक है।

अनुसन्धान सहायक,
भाषा एंव संस्कृति विभाग,
शिमला-3

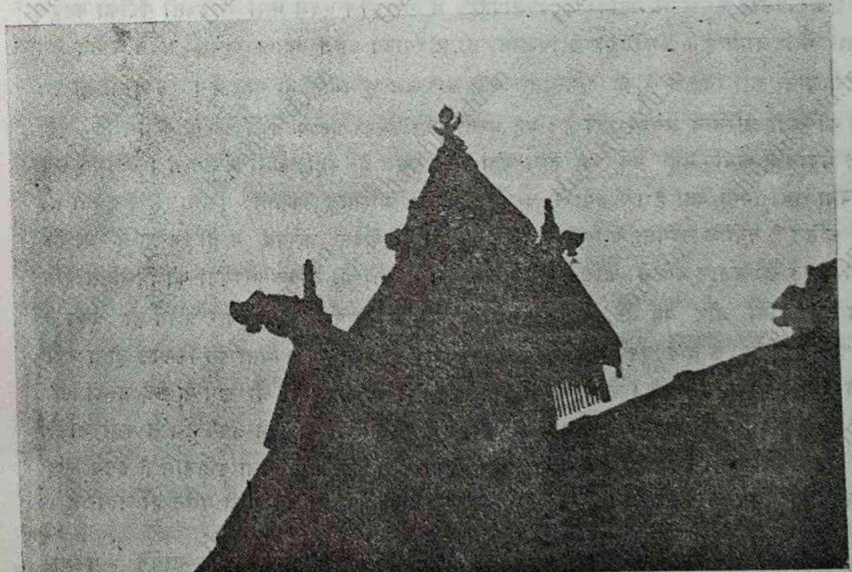

किन्नौर के एक देव मन्दिर का ऊपरी भाग

कांगड़ा घाटी में बहने वाली नियुगल खड्ड

O रतन लाल चौधरी

इस धरती पर प्रत्येक वस्तु का अपना एक ऐतिहासिक परिवेश है। कहते हैं कि इतिहास स्वयं को दोहराता है परन्तु यहां दोहराने वाली कोई बात नहीं है अपितु इतिहास के उन धुन्धले चिन्हों को स्पष्ट करना है। हमारी धार्मिक पुस्तकों में गंगा, यमुना, सरस्वती नदियों का उल्लेख है परन्तु सरस्वती नदी का अब कोई चिन्ह नहीं है। अब निम्नलिखित दोहे का भी कोई अर्थ नहीं रह गया है। – 'गंगा, यमुना, सरस्वती, तीनों मिले प्रयाग।
छाली ली समुन्द्र ने पाप कटे हरिद्वार'।।

तो भी कभी न कभी सरस्वती नदी का अस्तित्व रहा है। कालान्तर में यह सूख गई होगी। जय शंकर प्रसाद ने अपने महाकाव्य 'कामायनी' में सारस्वत प्रदेश तथा सरस्वती नदीको काबुल कन्धार में दिखाया है। परन्तु कुछ विद्वान तो हरियाणा प्रान्त को सारस्वत प्रदेश मानते हैं। कुछ विद्वानों का विचार है की सरस्वती नदी का जल भूमिगत हो गया है। कुछ भी हो इस नदी का कभी अस्तित्व अवश्य रहा है। यह धरती तथा इसकी प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है - जहां आज मैदान हैं कभी वहां पर्वत थे तथा जहां पर पर्वत हैं वहां कभी मैदान थे। समय सब को बना तथा मिटा देता है। हमारी इस धरती का अस्तित्व कितना पुराना है कहना तो अति कठिन है क्योंकि सभ्यता के लिखित रूप में प्रमाण केवल ऋग्वेद में ही मिलते हैं जो कि छः या साढ़े छः हजार वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। तो भी वैदिक सभ्यता को विकसित होते समय लगा होगा और यह भी माना जाता है कि इस धरती पर चौदह बार प्रलय हो चुका है और प्रत्येक प्रलय के बाद एक मनु हुए है जिससे बार-बार मानव सभ्यता का विकास होता रहा है तथा नष्ट होती रही है। गोस्वामी तुलसी दास जी भी भगवान श्री राम के कई जन्मों का वर्णन करते हैं। जल पलावन की घटना तो विश्व के सभी देशों में अपने-अपने ढंग से कही जाती है। अतः हिमाचल प्रदेश में बहने वाली अनेक नदियां, खड्डों का अपना इतिहास है इनमें कुछ नदियां, खड्डे अपना स्थान बदलती रही हैं। ध्यान से देखने पर इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है।

पाठकों को जो जानकारी मैं देने जा रहा हूं इससे पाठक अवश्य चौंक जायेंगे परन्तु यह जानकारी सत्य पर आधारित है तथा इसके प्रमाण विद्यमान हैं। पालमपुर के ऊपर बन्दला नामक स्थान से जो दरिया बहता है जिसे मानचित्र पर नियुगल खड्ड दिखाया गया है यह कभी

बन्दला टी-स्टेट के बीचों-बीच बहती थी। घुवर से होती हुई सिद्धपुर, गरला, बढ़करी गांव से होती हुई थुरल से ऊपर अब वहने वाले दरिया से मिलती थी परन्तु अब यह वहां से नहीं बहती अब वहां उपजाऊ भूमि है जिस पर खेती होती है। तथा दोनों ओर जो इसके तट थे वहां पर गांव बसे हैं। एक तट पर राणी सिद्धपुर, भन्डू, मट्ट आदि गांव है तो दूसरे तट पर चौकी सिद्धपुर, अर्ला, सलोह आदि गांव बसे हैं। यह स्थान लगभग पन्द्रह-बीस किलो मीटर लम्बा है। इस का प्रमाण यह है कि जो भारी भरकम पत्थर आज बहने वाली नियुगल खड्ड में मिलते हैं वह इस हार में मिलते हैं। यद्यपि बीचों-बीच छोटे-छोटे नाले बहते है तथापि यह नाले इतने भारी भरकम पत्थर नहीं ढकेल सकते तथा इन्हें मीलों तक फैलाने कि क्षमता इनमें नहीं है। कालान्तर में इस खड्ड ने अपना रास्ता फिर बदला और यह चिम्बल हार से बहने लगी। मैंहजां, मोहरला, फरेड़ आदि गांव इसके तट थे। इस हार में भी वैसे ही भारी भरकम पत्थर मिलते हैं परन्तु तब यह परौर नामक स्थान पर अब बहने वाले दरिया से मिल जाती थी। परौं नामक स्थान पर यहां गाड़ी तथा बस के लिए दो अलग-अलग पुल बनाए हैं जो पठानकोट तथा कुल्लू को आपस में जोड़ते है। यह दोनों पुल भारत में अंग्रेजी सरकार ने बनवाये थे। बस का पुल पुराना पड़ गया है अब हिमाचल सरकार एक नया पूल बना रही है। इस खड्ड में इतनी शक्ति है कि १९५२ में गाड़ी के पुल का कोई पचास फुठ लम्बा गाडर जो लगभग १०० फुट ऊंचा था पानी ने उठाकर कोई आठ किलोमीटर दूर तक बहा दिया था। जो आज भी गगल नामक स्थान पर पड़ा हैं। उसे उठाने की कोई व्यवस्था नहीं है। क्योंकि सड़क बनाने में ही बहुत पैसा चाहिए। इस खड्ड का इतना तेज बहाव है कि कई मिट्रिक टन पत्थरों को रेड़कर दूर-दूर फैला देती है। तथा प्रत्येक वष अपने बहाव का स्थान बदलती रहती है। अब यह खड्ड इतनी गहरी हो गई कि बन्दला नामक स्थान पर तोलगभग एक कि लोमिटर गहरी है। अब यह मग्मेटला, लटवाला 'री' आदि गांवो के साथ-साथ बहती है। इस प्रकार इस खड्ड ने अपना तीसरा स्थान बदला है। अभी तत्काल इसके बदलने की कोई सम्भावना नहीं है क्योंकि इस का बहाव मार्ग धरती से बहुत गहरा हो गया है तो भी इसके बदलने से इंकार नहीं किया जा सकता। १९५२ में इस खड्ड ने अनेक गांवो को बहा दिया था तथा कई जाने चली गई थी। वास्तव मे यह खड्ड हिमालय से निकलती है तथा इस कि ढलान इतनी अधिक है कि पानी का बहाव विद्युत धारा के समान होता है। यदा-कदा हिमालय की भारी भरकम चट्टानें टूटकर इस की धारा को रोक देती हैं। पानी जब एक बान्ध के रुप में इक्ट्ठा हो जाता है तो वह एकदम उस अवरोध को तोड़ देता है। फलस्वरूप घाटी में तवाही मचा देता है। इसके आसपास रहने वाले गांवो के लोग पीर-खवाजा की पूजा करते हैं। ताकि उनकी रक्षा हो सके। इसी खड्ड के उद्गम स्थान के पास एक जल प्रपात है (water fall) यह एशिया का सब से ऊंचा जल प्रपात है इसे 'कींगर छो' स्थानीय भाषा में कहा ज ता है। जहां ये गिरता है उसके पास जाया नहीं जा सकता क्योंकि दोनों ओर हिमालय की ढलानदार चट्टानें हैं तथा बीच में नियुगल खडड की खाई के समान जल धारा है। पानी जब नीचे गिरता है तो वह चांदी के

समान धवल धुएं में परिवर्तित हो जाता है। इसे बन्दला में बने नियुगल पार्क से देखा जा सकता है। अनेक विदेशी कलाकार यहां अपनी रंगों की कूचियां लेकर पहुंचे होते हैं। और इस प्राकृतिक सौंदर्य को चित्रों के रूप में समेट कर ले जाते हैं।

इस खड्ड के आगे सरकारी साधन भी असमर्थ पड़ते जा रहे हैं क्योंकि सिंचाई के लिए अनेक कुहलें यहां से निकाली गई हैं जिन पर अब अधिकांशतः सरकारी नियन्त्रण है। एक तो यह खड्ड प्रत्येक वर्ष अपना बहाव बदल देती है तथा शनैः-शनैः गहरी होती जा रही हैं। बरसात के दिनों में यह कुह्लों के तट बन्धों को तोड़ देती है तथा बरसात के उपरान्त इसकी मुरम्मत करनी पड़ती है। सरकारी नियन्त्रण भी लगभग 1978-79 में हुआ है इस से पूर्व इन कुह्लों का प्रबन्ध श्रमदान से किया जाता था। इसकी देखभाल के लिए एक 'कोहली' रखा होता था जिसे फसल पर कुछ अनाज देते थे परन्तु अब कुछ कुह्लों का नियन्त्रण सरकार के हाथ में है तथा सिंचाई के रूप में सरकार कुछ रूपये जिमींदारों से लेती है तथा मुरम्मत का खर्चा सरकार वहन करती है।

अतः यह खड्ड इस क्षेत्र के जन जीवन की जीविका का साधन है। इसी के कारण घाटी सस्य श्यामला तथा उर्वरा है। कभी-कभी यह अपना उग्र रूप धारण कर के कष्ट का कारण बन जाती है। कुछ वर्ष पूर्व भारत सरकार की यह योजना थी कि इस खड्ड के उद्गम स्थान पर हिमालय पर्वत को वर्मा लगाकर सुरंग निकाली जाए तथा हिमालय की दूसरी ओर बहने वाली रावी नदी का जल इस सुरंग द्वारा लाकर विद्युत का उत्पादन किया जाए परन्तु किन्हीं जटिल समस्याओं के कारण ऐसा करना सम्भव न हो सका तथा भारत सरकार ने रावी नदी पर 'थीम डैम' बनाने की अनुमति दे दी। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राकृतिक पर्यावरण हमारी संस्कृति को विकसित करने में किस प्रकार सहायक है तथा इस पर्यावरण में सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा होती है। पाठक वृन्द अपने जीवन के अमूल्य क्षणों में से कुछ क्षण निकाल कर यहां आए तथा यहां के प्राकृतिक सौंदर्य की छटा का हगपान करें।

अनुभागपाल (मुद्रण)
हि०प्र० राजकीय मुद्रणालय
घोड़ा चौकी शिमला-171005

कुल्लू जनपद में विरशू

O डॉ० सूरत ठाकुर

हिमाचल प्रदेश की कुल्लू घाटी का जब भी प्रसंग आता है तो वहां के देवताओं की सजी-धजी पालकियों का चित्र मानस पटल पर उभर आता है। यह घाटी जो देवभूमि के नाम से विश्व विख्यात है के प्रत्येक गांव में वर्ष भर असंख्य मेलों और त्यौहारों का आयोजन होता है। लगभग सभी मेलों और त्यौहारों का सम्बन्ध किसी न किसी धार्मिक, पौराणिक और ऐतिहासिक पृष्ट भूमि से जुड़ा होता है। एक ओर मेले जहां सांस्कृतिक छवि को उजागर करते हैं, वहीं दूसरी ओर इनका व्यवसायिक महत्व भी होता है। इन मेलों को हर जाति एवं वर्ग के लोग बिना भेदभाव के मनाते हैं और वर्ष भर के दुःख और चिन्ताओं को भूल कर एकदम आनन्द सागर में डूब जाते हैं। भिन्न-भिन्न गांवों और इलाकों के लोग पारम्परिक वेशभूषा में जब किसी मेले में एक स्थान पर मिलते हैं तो हर्षोल्लास में पारस्परिक सौहार्दपूर्ण पूछताछ तथा मिटाई, मुड़ी, फल और पैसे आदि के लेनदेन के दृश्य बड़े रुचिकर लगते हैं।

कुल्लू घाटी के विरशू के पर्व की एक अपनी ही पहचान है। जिस तरह पंजाब में फसल कटाई की खुशी में बैशाखी का त्यौहार बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। उसी प्रकार हिमाचल के कुल्लू क्षेत्र में देवता के स्वर्ग से आगमन पर विरशू का मेला बैशाख की सक्रांति को शुरु होकर पूरे महीने चलता रहता है।

मेले के सम्बन्ध में अनुश्रुति :- जनश्रुति है कि आज से 400-500 वर्ष पूर्व कुल्लू में सर्दियों के मौसम में भारी हिमपात हुआ। लोगों का अपने-अपने घरों से बाहर निकलना भी मुश्किल हो गया जिन लोगों के पास खाने-पीने तथा ईंधन का प्रबन्ध नहीं था वे भूखे मरने लगे। बर्फ की चट्टानों के खिसकने से गांव के गांव दबने लगे। ऐसी स्थिति में घाटी के सभी लोग अपने-अपने देवताओं की शरण में गये और उनसे प्रार्थना की कि वे ही उनके सहारे हैं, सम्बल हैं, उदारक हैं तथा रक्षक हैं। अतः उन्हें इस संकट से छुटकारा दिलाया जाए। तब क्षेत्र के सभी देवी-देवता अपने- अपने गांव वासियों के हित के निमित्त स्वर्ग लोक में भगवान के दरबार में गये। वहां पहुंच कर उन्होंने भगवान से प्रार्थना की कि उनके भक्तों पर घोर विपदा आई है। यदि इस समय उन्हें इस विपत्ति से मुक्त न किया जाये तो उनका हम पर से विश्वास उठ जाएगा। अतः इतना ज्यादा बर्फ न पड़ने दिया जाए।

भगवान ने उनकी प्रार्थना सुन ली और कहा, "ऐसा ही होगा।" परन्तु साथ एक शर्त भी रखी कि उन्हें हर वर्ष माघ सक्रांति से बैशाख की सक्रांति तक उनकी सेवा में रहना होगा तब से हर देवता प्रतिवर्ष माघ की सक्रांति को भगवान के दरबार में चले जाते हैं तथा बैशाख की सक्रांति को वापिस गांव आते हैं । देवताओं के आने की खुशी में गांव वालों ने बिरश का मेला मनाना शुरु किया।

मनाने का ढंग : – बैशाख की सक्रांति को जब देवते वापिस आते हैं तो वे आकर भगवान के पास जाने व वापिस आने का पूरा विवरण अपने चेले (गुर) के मुख से गांव वासियों को सुनाते हैं। जिसे देऊ भारथा कहा जाता है। लोगों का विश्वास है कि आते समय वे गांव वालों के लिए अनाज, फल, सब्जियां तथा हर प्रकार की सुख समृद्धि लाते हैं।

सक्रांति की पूर्व संध्या को 'कोड' कहा जाता है। उस शाम देवता की पालकी को रंग-बिरंगे परिधानों, फूलों तथा सोने-चांदी के मोहरों से सजाया जाता है। इसी दिन गांव वाले आटे की मीठी रोटियां बनाकर आपस में बांटते हैं। नवविवाहिता स्त्री जो चैत्र मास में मायके नहीं आती उनको भी ये मीठी रोटियां उनके भाई द्वारा पहुंचाई जाती हैं, जो इस बात की सूचक होती है कि वे बिरशू के पर्व पर मायके में आमंत्रित हैं।

बैशाख की सक्रांति की सुबह देवता के मन्दिर के प्रांगण में सभी लोग इकट्ठे होकर देव पुरोहित से वर्ष का लग्नफल सुनते हैं। उसके बाद प्रत्येक गांव वासी के घर के आगंन में देवता जाता है। वहां उस परिवार के सभी सदस्य इकट्ठे होकर देवता के समक्ष खड़े हो जाते हैं। जहां देवता का चेला उन्हें चावल के दाने बांटता है जिसे देवता का आशीर्वाद समझा जाता है। देवता उस परिवार के प्रत्येक सदस्यों की इच्छाओं को पूरी करने का संकल्प लेता है। उनके दुःखों को दूर करने का वायदा करता है

इस प्रकार गांव के सभी परिवारों के घर आंगन में जाने के बाद तथा उनकी प्रार्थनाएं सुनने के पश्चात् देवता अपने मन्दिर के प्रांगण में आकर नृत्य करता है। इस नृत्य को देऊखेल कहा जाता है। यह नृत्य देर रात तक चलता है।

प्राचीन काल से चला आ रहा यह लोकोत्सव अब भी उसी मौलिकता के साथ बड़ी धूम-धाम से मनाया जाता है। शायद इसके पीछे देवताओं का काफी हद तक लोगों की भावनाओं को पूरा करना है। जब तक देवता के प्रति लोगों का विश्वास बना रहेगा तब तक यह पर्व निरन्तर चलता रहेगा।

प्राध्यापक, राजकीय महाविद्यालय
कुल्लू, (हि०प्र०)

भटियात का चमत्कारी देवता नाग बिणतरु

O धर्म चन्द कौशल

नाग बिणतरु का मन्दिर रायपुर या चुवाड़ी से लगभग 8-10 किलोमीटर दूर है। इस स्थान की ऊंचाई लगभग 5000 फुट से भी अधिक की है। एक नाले में नाग देवता जी की मूर्तियां एक चबूतरे नुमा पत्थर पर स्थापित की हुई हैं। किवदन्ती है कि नाग देवता मन्दिर में रहना पसन्द नहीं करते। आग्रह करने पर भी मंदिर में रहने की स्वीकृति 'चेला' द्वारा प्राप्त न हो सकी। ठाकुर सरदारसिंह नरयाल ने यहां पर एक छोटी सी धर्मशाला बनवाई थी परन्तु वह भी गिर गई यह देवता की इच्छा से हुआ ऐसा कहा जाता है। यहां प्राचीन काल से हर वर्ष ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को रात्रि के समय मेंला लगता है, जिसमें आस-पास के हजारों श्रद्धालु 'नाग भक्त' भेंट लेकर इतनी दूर, विकट वन मार्ग से चल कर आते हैं और अपनी श्रद्धा के पुष्प चढ़ाते हैं। कभी-कभी रात को वर्षा होने पर इतनी सर्दी हो जाती है कि बैठना मुश्किल हो जाता है। कोई भी आदमी छाता नहीं ले सकता ऐसी देवता की आज्ञा है। अगर लोग छाते आदि का प्रयोग करेंगे तो वर्षा उतनी अधिक बढ़ती जाएगी और यदि नाग देवता की जय-जय कार करेंगे तो वर्षा कुछ ही पलों में थम जाती है, ऐसा कहा जाता है।

यहां से चार किलोमीटर दूर एक बहुत बड़ा राजपूतों का गांव प्रयुंगल नाम से है जहां नाग देवता का स्थान है, इसी गांव में नाग देवता का पुजारी और 'चेला' रहते हैं। देवता का जितना भी सामान है जिनमें जेवर, सोने व चांदी के नगारे, शहनाई आदि इन्हीं के पास रहता है। मेले वाले दिन नगारे, बंसरी, काहलों (शहनाई की तरह का एक वाद्य यन्त्र), रणसींगा की वाद्य ध्वनियों में जिन्हे बजाने वाले बैंसीं (एक खास किस्म की जाति जिन्हें चम्बा के राजा द्वारा यह काम सौंपा गया था) होते हैं, यह वाद्य यन्त्र बजाते हैं और पुजारी लोग नाग देवता का सामान उठाकर हजारों श्रद्धालुओं के साथ नाग देवता की जय-जय कार करते हुए, नाचते हुए और गाते हुए जलूस की शक्ल में नाग देवता के 'थड़े' स्थान की ओर चलते हैं। संध्या के समय नाग देवता को फूल मालाओं, बहुमूल्य वस्त्रों तथा सोने व चांदी के छत्रों के साथ सजाते हैं। तमाम वाद्य यन्त्र जो कि बहुमूल्य धातुओं के बने हैं, शंख और घंटों की गूंज के साथ, जहां कोई आसपास बस्ती नहीं है एक अनोखा वातावरण पैदा करते हैं। चारों ओर देवदार के बृक्षों व पहाड़ियों के बीच जय जयकार की ध्वनि से प्राचीन संस्कृति की एक झलक उत्पन्न हो जाती है और हर

श्रद्धालु के मन में शान्ति सी आ जाती है तथा भक्ति की लहर हर एक इन्सान के अन्दर पैदा हो जाती है ।

यहां के शांत वातावरण, शीतल जल तथा प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर ऐसा महसूस होता है कि मानों किसी तपोवन में प्रविष्ट हुए हों। यहां पर प्राचीन काल से ही बलि (बकरे आदि की) श्रद्धालुओं द्वारा दी जाती है। कहते हैं कि अगर नाग देवता के आगे प्रार्थना की जाए और उससे सच्चे मन से जो मांगा जाए, मिल जाता है। कहने का तात्पर्य इतना है कि हर श्रद्धालु की इच्छा पूरी हो जाती है और जिसने जो मनौती की हो उसे वहां मेले वाले दिन देनी पड़ती है। प्रथा के अनुसार लोग बकरे आदि को ही 'सुखण मनौती मानते हैं। और कभी-कभीं इतने बकरे कटते हैं कि दिल कांप उठता है। बकरे के खून का 'लोधा' प्रसाद बांटा जाता है, लेकिन यह भी व्यवस्था है कि जो मांस आदि का सेवन नहीं करते उन्हें हलवा आदि प्रसाद में मिलता है।

अर्द्धरात्रि के समय यहां 'चियाना' (आग का अखाड़ा) जलाया जाता है, जिसमें नाग का 'चेला' सज्ज-धज्ज कर हाथ में त्रिशूल लिए काफी समय तक नाचता रहता है। लेकिन 'चेला' के वस्त्र या शरीर को आग से किसी प्रकार का नुकसान नहीं होता। दर्शक गण इस चमत्कार को देखकर स्तम्भित से रह जाते हैं। उसी समय 'चेला' द्वारा देवकोप से पीड़ित लोगों के प्रश्नों के उत्तर तथा निर्वाण आदि की विधि भी बताई जाती है। लेकिन यह अचम्भे की बात है कि हर आदमी को उसका नाम बुलाकर आवाज देता है। भले ही वह आदमी हिमाचल प्रदेश या देश के किसी भी कोने का हो। इसके पश्चात् प्रातः नाग देवता की आरती आदि हो जाने के बाद मेला समाप्त हो जाता है। लोग सुबह अपने-अपने घरों को चल पड़ते हैं।

नाग देवता का सामान पुजारियों द्वारा सुरक्षित अज्ञात स्थान पर कड़ी निगरानी में रखा जाता है। नाग विणतरु का बड़ा भाई "नाग मंढौर" है। जिसका मन्दिर चुवाड़ी के पास कुठेड़ नामक स्थान में है वहां भी श्राद्धों के प्रथम आठ दिनों में मेला लगता है और नाग विणतरु भी अपने पुजारियों चेलों आदि के साथ अपने ज्येष्ठ भाई से मिलने आता है। इस नाग देवता में भी बड़ी चमत्कारी शक्ति है, जिसका इतिहास भी बहुत लम्बा है।

नाग विणतरु जहां भटियात के लोगों का परम पूज्य है, वहां राजा चम्बा के राज-परिवार का कुल देवता माना गया है। अंग्रेज़ों व मुसलमानों के शासन काल में चम्बा के राजाओं को कई बार कठिन से कठिन परीक्षाओं में देवभूमि के राजा होने के कारण गुजरना पड़ा और सफल हुए। राजाओं ने अपनी मनौती के अनुसार नाग देवता को हजारों रुपयों का सामान व जमीन दी और नाग देवता के आगे नतमस्तक होकर उसके महत्व को बनाए रखने का प्रयास किया। कहा जाता है कि चम्बा के राजा को एक बार दिल्ली में किसी सरकारी जलसे के लिए बुलाया गया। लोगों में चर्चा थी कि राजा देव उपासक है तथा इनमें बहुत से चमत्कारी गुण है। दिल्ली में एक बहुत बड़ी खाई खुदवाई गई और राजा को कहा गया कि वह घोड़े पर सवार होकर इस खाई को

पार करे। राजा ने नाग देवता का ध्यान करके घोड़ी को आगे बढ़ाया और खाई पार कर गए लेकिन घोड़ी मर गई। एक बार दिल्ली में मुस्लिम सुलतान ने राजा को दिल्ली खाने पर बुलाया लेकिन परीक्षा हेतु खाना परोसा गया तथा राजा का थाल राजा से काफी दूर रखा गया व तीन मुंह वाला पानी का जग भोजन के पास रख दिया और कहा गया कि अगर तुम्हारे नाग देवता में इतनी ही शक्ति है तो भोजन का थाल स्वतः आपके पास पहुंचना चाहिए तथा इस तीन मुंह वाले जग से पानी पीते हुए पानी ऊपर नहीं गिरना चाहिए। इस तरह की शर्त राजा के समक्ष रखी गई। राजा ने उसे सहर्ष स्वीकार किया और नाग देवता को मन ही मन याद किया। कुछ ही क्षणों में थाल के नीचे से नाग देवता प्रकट हो गए, और दर्शक डर गए। राजा ने कहा, डरो मत यह मेरा कुल देवता है यह किसी को कुछ नहीं कहेगा। नाग ने थाली को अपने मुंह से सरकाकर राजा के आगे कर दिया और पानी के जग को इस तरह अपनी पूंछ से लपेटा और उसे भी राजा के आगे ला दिया तथा फिर अपना आकार थोड़ा छोटा करके जग के दो मुंह इस तरह बंद कर दिये कि राजा के पानी पीते हुए एक बूंद भी पानी की नहीं गिरी। इस तरह राजकुल को इन नाग देवताओं ने कठिन से कठिन परीक्षाओं में भी सफल किया और मुस्लिम सहनशाहों को भी स्तम्भित कर दिया।

एक बार की बात है कि राजा नाग देवता के मन्दिर में मनौती देने गए। पूजा आदि से निवृत होकर जब खाना खाने बैठे तो ज्येष्ठ मास की इतनी धूप थी कि बैठना कठिन हो रहा था तो राजा के नौकर (अर्दली) ने राजा के ऊपर छाता किया तो राजा ने कहा कि जिनके चरणों में मैं आया अगर वही छाया करेगें तो खाना खाऊंगा नहीं तो नहीं खाऊंगा। जब नाग देवता ने उनकी जिद्द देखी और धूप में बैठे हुए राजा के प्रण को देखा तो नाग देवता से नहीं रहा गया और उन्होंने (नाग देवता ने) इतना बड़ा फन फैलाया कि सारा स्थान छाया से ढक गया और राजा ने छाया में खाना खाया।

नाग विणतरु के दो भाई और भी हैं। एक नाग खजी और एक नाग छतराल के नाम से मशहूर है और एक बहन है जो नागणी माता के नाम से प्रसिद्ध हैं। जिसका स्थान नूरपुर से कोई आठ किलोमीटर धर्मशाला रोड़ पर है। इस तरह हमारे देवी-देवता जहां परम पूज्य हैं वहां उन्होंने हमें कठिन से कठिन समस्याओं के समाधान में भी राय दी है। मैं समझता हूं कि इनकी (देवी-देवताओं की) महत्ता को जितना ज्यादा बढ़ाया जाए उतना कम है।

गांव व डा० रायपुर.
तहसील, चुवाड़ी,
जिला चम्बा, हि०प्र०।

कानम के मठ

○ अशोक हंस

जिला किन्नौर के स्पिलो गांव से पूह की ओर जाते समय लगभग आधे कि०मी० की दूरी पर पुल के पास से बांई ओर एक रास्ता कानम को जाता है जो लगभग एक-डेढ कि०मी० ऊपर की ओर है। मुख्य सड़क के साथ-साथ सतलुज दरिया बहता है। कानम गांव के एक ओर लगभग 3 कि०मी० की दूरी पर लवरंग गांव है। इसके साथ एक ओर गांव करला है।

कानम गांव में लगभग 1000 की आबादी है। इस गांव में निम्नलिखित जातियां पाई जाती हैं :–

(1) चामंग (खद्दी बुनने वाले चमार)
(2) डोमंग (लोहार)
(३) ओरस (बढ़ई)
(४) खोशिया (राजपूत)

इन जातियों में लगभग सभी लोग बौद्ध धर्म को मानते है। इसी धर्म की मान्यताएं मान कर कुछ पुरुष लोग लामा और भिक्षु बन गए हैं और कुछ महिलाएं चोमो बनी हैं।

लवरंग, स्पिलो और कानम तीनों गांव की बोलियों का एक संगम है जिसे सुमसो नाम से जाना जाता है। यह बोली 'कन्पा' प्रकार की है और किन्नौर की अन्य बोलियों से भिन्न है।

इन गांवों में एक बैशाख को बैशाखी मेला, एक सावन को दगरेन मेला, बीस भादो को मेन्तों का मेला, सात कार्तिक को शेरकुम मेला, मगशीर में दुनिया उख्यङ मेला और ख्वङ्री मेला, पोष मास में लोसर मेला, पन्द्रह माघ को माहङ संङस मेला, फागुन में लामोत मेला और चैत्र में शिवरात्रि मेले का आयोजन होता है।

कानम गांव में निम्नलिखित मठ हैं: –

१ **लुन्डुब गेफेल:** यह मठ कानम गांव का मुख्य मठ माना जाता है। लुन्डुब का अर्थ है 'अर्थ का सिद्ध करना' और गेफेल का अर्थ है 'धर्म को फैलाना'। इस मठ में बड़े और छोटे प्रकार की तांबे और मिट्टी की निम्नलिखित मूर्तियां हैं :-

१ भगवान बुद्ध।
२ आर्य आवलोकितेश्वर।
३ सुमाती कीर्ति (अशोक)।

इस मठ के अन्दर मुख्य द्वार से प्रवेश पाने से पहले एक बरामदा है जिस की दीवारों में चित्रों का निर्माण किया गया है।

बरामदे में छः दीवारें सम्मिलित हैं। दो दीवारों में दो-दो करके कुल चार दिशाओं के चित्र हैं। दो दीवारों में वज्र पाणी (अर्थात भूत-प्रेत रुकाने के) के चित्र हैं। एक दीवार में नर्क-स्वर्ग और छठी दीवार में ग्राम 'देवता नेसूर जो छेम्पो' का चित्र है।

मन्दिर के अन्दर तीन दीवारों में अनेक चित्र हैं। एक दीवार में छोङ्यो (धर्मपाल) का चित्र है जिसमें नौ शक्तियां (देवता आदि)। १. शूम्पो २. कूम्पो जैल जी ३. छंकवा ४ यून्कर५. छगजी ६. छंङ्पा ढकपो ७. झांपा ८. यमशिन ९. नेसरे के चित्र भी सम्मितिल हैं। दूसरी दीवार में तान्त्रिक ज्ञान के देवता का चित्र हैं जिसके साथ यम, देछो और शङ्पुई शक्तियों के चित्र भी शामिल हैं। तीसरी बडी दीवार के मध्य मेरावा का चित्र जिसके दांई ओर आयुदेव, मंजूश्री और तारा के चित्र एवं बांई ओर लोजा लामा के अवतार (कैलछूप खइडुप है और लोचा रत्न भद्र) और पदम संभव के चित्र हैं। इस मन्दिर में अनेक ग्रन्थ (कन्जुर) उपलब्ध हैं। सभी भित्ति चित्र दुर्लभ चित्र हैं।

२ **कन्जुर मठः** इस मठ में भगवान बुद्ध की मिट्टी की मूर्ति और तांबे की चोंगापा की मूर्ति है। इसके अलावा जम्पा, भगवान बुद्ध, डोलमा आदि की छोटी-छोटी मूर्तियां हैं। कन्जुर मठ में त्रिपिटिक साहित्य उपलब्ध हैं। कन्जुर नामक साहित्य १०८ भागों में और तन्जुर नामक साहित्य लगभग २०० भागों में उपलब्ध है। यह मठ पुस्तकालय के नाम से जाना जाता है। स्थानीय भिक्षु विद्वान श्री लोवसङ डोन्डुव के अनुसार इन ग्रन्थों का कागज और सामग्री अभिन्न हैं। यह कागजऔर सामग्री उन कन्जुर, तंजुर ग्रन्थों से भी अभिन्न है जो नालन्दा विश्वविद्यालय, चीन और जापान आदि स्थानों में रखे गये हैं।

३ **ठाकुर मठः**- यह नया मठ है। इस मठमें मैत्री बुद्ध (आने वाला बुद्ध) भगवान बुद्ध तथा अन्य देवी-देवताओं की छोटी-छोटी मूर्तियां हैं।

४ **सुरपू गोम्पाः** –इस गोम्पा में लोपोन रिम्पोछे, चोङ्-खापा, आर्य आवलोकितेश्वर की मूर्तिया हैं।

५ **मोगन टाशी छोईलिङ मठः**—इस मठ में आर्य आवलोकितेश्वर, चोङ्-खापा (सुमाती) कीर्ति' और पलदन लामों की मूर्तियां है। इसके अलावा छोसतेन (सतूप) तथा छतकङ उपलब्ध है।

६ **लगन/लाखङ मठः** – इस मठ में महात्मा बुद्ध की बड़ी मूर्ति के अलावा लोपोन रिनपोछे और चंगराजिक देवी की मूर्तियां हैं।

७ **जोमो मठः—**यह जोमो का मठ है। यहां पर चांररे ज़ीक, चोङ् खाके, खाईडुब और जान छप आदि मूर्तियों के साथ-साथ मन्त्र-पुस्तक भी रखी हुई है। जीचुन जमपाई यङ और पन्मा लामों के चित्र भी उपलब्ध हैं।

८ **नेसूर जो छेम्पो मठ**यह मठ देव मन्दिर नाम से प्रसिद्ध है। इसमें ग्राम देवता नेसूर जो छेम्पो की पालकी भी रखी हुई है।

उक्त सभी मठों की दीवारों पर खाने व अलमारी की तरह स्थान बने हुए हैं जिन्हें शीशे के दरवाजों, चौखटों से बन्द किया हुआ है। कई स्थान तो खोले जाते हैं और कई सील लगाकर बन्द किए गए हैं, जिनमें छोटी-छोटी मूर्तियां हैं। इ के अलावा अनेक चित्र भी उपलब्ध हैं।

तकनीकी अधिकारी, अकादमी
शिमला-171001

कानम के लामाओं और चोमो द्वारा पूजा

पुस्तक 'पाण्डुलिपि' परिचय

—स्वर्ण लता शर्मा

पुस्तक रूप पाण्डुलिपियों (तीन) का परिचय निम्नलिखित रूप में बृहत खोज और शोध के लिए प्रस्तुत है।

प्रथम पाण्डुलिपि वैताल पचीसी, रामचरित मानस तथा कबीर के दोहे तीन भागों में बांटी गई है। प्रस्तुत पाण्डुलिपि हरिपुर के प्रहलाद कवि की मूल रचना की प्रतिलिपि कवि राम गहल्वाण वासी डाडा नगर द्वारा विक्रमी सम्वत् 1851 में फागुण प्रविष्टे 29 पंचमी' तिथ सोमवार को लिखी गई है। सम्भवतयः पुस्तक की मूल प्रति भी कहीं उपलब्ध हो।

पुस्तक मोटे भूरे कागज पर काली, लाल स्याही से कलम द्वारा लिखित है।

पुस्तक=9′×6′ कुल पृष्ठ लगभग 230

हाशिया=एक-एक इंच पृष्ठ के दोनों ओर तीन-तीन बारीक लाईने खींच कर बनवाया गया है। मध्य के 4 पृष्ठ पर लिखा गया है। पृष्ठ आमने-सामने के दो पृष्ठों को लेकर एक माना गया है।

भाषा:— भाषा अवधी है जिसमें स्थानीय भाषा का भी थोड़ा मिश्रण है। पुस्तक का प्रथम भाग और दूसरे भाग में निम्नलिखित छन्दों और दोहों का प्रयोग है।

छन्द:—1. सालूर छंद 2. रंड छंद 3. प्लवंग छंद 4. अमाणक छंद 5. पद्ममरी छंद 6. अलूर छंद 7. गंगा छंद 8. पुरवेसर छन्द 9. गाथा छंद 10. रंगका छंद 11. रणिका छन्द 12. रेगिका छन्द 13. कुंडलिया छन्द 14. अनीण छन्द।

दोहा:—1. मदन मंजरी दोहा 2. चूड़ामणि दोहा

छप्पै:—सी छप्पै

पुस्तक पद्य, दोहा, चौपाई, छन्द, श्लोक, सोरठा और छप्पै में लिखी गई है।

पुस्तक के प्रथम भाग वैताल पचीसी में कुल 898 छन्द, श्लोक, दोहे, छप्पै, सोरठा, चौपाई

और 145 पृष्ठों में लिखित है। इसमें पच्चीस कथाओं का परिचय इस प्रकार है।

कथाएं :—कुल छंद, छप्पै, दोहे, श्लोक, सोरठा, चौपाई संख्या

1. पद्मावत कथा=66
2. हरमण-करमण साधव माधव कथा=23
3. राजा रूपसेन की सुक सारिका की कथा=49
4. समिद्दिग देव राजा की कथा=36
5. राजा मंत्री हरिदास की कथा=26
6. राजा धर्मसील की कथा=26
7. राजा चम्पेश्वर की कथा=15
8. राजा गुणधियां की कथा=29
9 राजा मदन वीर की कथा=39
10. राजा गुणशेखर की कथा=29
11. राजा वल्लभ की कथा=23
12. राजा चूड़ामणि की कथा=19
13. राजा वलीनरधीर की कथा=20
14. सुखीचार की कथा=29
15. जीमूतवाहन की कथा=30
16. राजा धर्मसील की कथा=36
17. राजा महासेन बलवान की कथा=32
18. भूपति सुंदरदेव की कथा=38
19. राजा रूपदत्तर की कथा=59
20. श्री नृपति वीर गनवर्धन की कथा=63
21. श्री विपलेश्वर नृपति की कथा=21
22. श्री विदग्धनृपति की कथा=31
23. राजा धर्मसेन नीलकंगर की कथा=70
24. एक हरिदत्त, एक जग्यदत्त की कथा=36
25. राजा विक्रमसेन, वैताल संवाद कथा=53

द्वितीय भाग – राम चरित मानस

पुस्तक=9"X6"

पृष्ठ=78

इस भाग को कवि ने भुजंग छन्द, छन्द निराज, दोहा कवित, सोरठा और चौपाई में अवधी भाषा में ही लिखा है।

रामचरित मानस के राम-सीता विवाह को कवि द्वारा कांगड़ा विवाह पद्धति द्वारा सम्पन्न करवाना कृति की विशेष कल्पना है।

कांगड़ा विवाह पद्धति के अनुसार कवि ने बारात के साथ बाजों में छैणे वेन डोरु, बीणा, ढ़ोलक, सरिंदा का वर्णन किया है। बारात के साथ डोग, भाटों का वर्णन है।

राम के विवाह तिलक का वर्णन पुस्तकानुसार 'लीये अगरचन्दन कीये तिलक साजे ।। लीयो दाख गरी मेवा द्विरंगी नरेला छुआरा धरयानयंगी ।। लीये लौंग इलायची भलेऐल दानें ।। बहु भांतरंगी मिठाई विदाना ।। भले कीर रूपी धरेहेम थाला ।। लसें लाल मोती धरेपेल माला ।।

बारात को परोसे जाने वाले विभिन्न व्यंजनों में सगोतें, जलेबी, लड्डू, परांका, पतासे, समोसे, जिमींकन्द का खट्टा, लिसाड़ा, अम्बाड़ा, आमों की चटनी (छिधा) दही का मट्ठा, मीठा भात, वरंजे, मधरा (सफेद चने का) दालें, चावल मुख्य वर्णित हैं।

बारात को गोबर से लेप किए चौके में बिठाया और दक्षिणा दी। सीता को दहेज में रेशम जरी के कपड़े, जरी की लाल चुन्नी, रजाईयां, सिराहने गिलाफ सहित, पीतल के बर्तन, पलंग पीढ़ा और दस दासियां दी। अब इस वर्णन से कांगड़ा में प्रचलित विवाह पद्धति की कितनी झलक मिलती है। पाठकों पर छोड़ती हूं।

पुस्तक के अन्तिम भाग में कबीर के 56 दोहे हैं। रामचरित मानस की प्रतिलिपि कवि बिशेसर गांव धनेटा राज्यकाल राजा गोपाल की मूल प्रति भी है।

द्वितीय पाण्डुलिपिः- विवाह पद्धति पर लिखित दूसरी पाण्डुलिपि कृष्ण लाल गहल्वाण वासी डाडा नगर की मूल प्रति लिखित बिक्रमादित्य सम्वत् 1901 चैत्र प्रविष्टे 30 बुधवार राजा गोबिन्द सिंह के राज्यकाल (गोबिन्द सिंह सीबा का अन्तिम राजा था जो सम्भवतयः 1928-30 संम्वत् में डाडा में राजा रणजीत सिंह से पराजित होकर बस गया था।) पुस्तक वैदिक संस्कृत में लिखित है।

पुस्तक $= 7'' X 4\frac{1}{2}''$ हाशिया $= 1'' X \frac{1}{2}''$

तृतीय पाण्डुलिपि

सिंहासन बतीसी

यह पाण्डुलिपि 10′X6′ पुस्तक रूप में है। दोनों ओर लाल स्याही से 1′, $\frac{1}{2}$″ हाशिया डाला गया है। कागज मोटा भूरा और काली लाल स्याही तथा कलम का प्रयोग किया गया है। यह पुस्तक भी कवि कृष्ण लाल गहल्वणा वासी डाडा नगर द्वारा विक्रमी सम्वत् 1890 (१८९०) श्रावण प्रविष्टे एक, द्वादश तिथ रविवार को लिखित है।

पुस्तक अवधी भाषा में दोहा और चौपाई में लिखी गई है। पुस्तक के आरम्भ में पार्वती द्वारा शिवजी से प्रार्थना की गई है कि वह उसे विक्रमजीत राजा के सिंहासन की कथायें सुनायें। शिवजी पार्वती की प्रार्थना स्वीकार करते हुए विक्रमजीत राजा उसके राज्य और सिंहासन के विषय में बताते हैं। तत्पश्चात् क्रमवार बत्तीस कथायें कही गई हैं। पुस्तक के कुल पृष्ठ 223 हैं।

सम्भवतयः इस पुस्तक को पद्य रूप कवि ने संस्कृत के आख्यान लेखक की बृहद् कथा में से आख्यान लेकर अवधी भाषा में कविता रूप दिया है।

उपरोक्त कवि कृष्ण लाल द्वारा लिखित पुस्तकों की प्रतिलिपि होने का कहीं संकेत नहीं है अतः इन्हें नवीन सूचना तक मूल प्रतियां माना जा सकता है।

उपरोक्त ही तीन पाण्डुलिपियों के आधार पर चार कवि शोध कार्य के लिए प्रकाश में आते हैं।

1. हरिपुर निवासी प्रहलाद कवि 2. धनेटा के बिशेसर कवि 3. गहल्वाण के राम कवि 4. गहल्वाण वासी डाडा नगर के कृष्ण लाल।

इन कवियों की अन्य रचनायें भी कहीं अन्यत्र उपलब्ध अवश्य होंगी।

डाडासीबा,
जिला कांगड़ा, (हि० प्र०)

पुस्तक समीक्षा

आसमान नहीं गिरते :

— डॉ० धर्मस्वरुप गुप्ता

भारतीय राजनीतिक मंच पर पिछले दशक में जिस प्रकार की राजनैतिक अव्यवस्था का नंगा -नाच हुआ- किसी से भी छिपा नहीं। अवसरवादिता ने आयाराम, गयाराम को जन्म दिया, जिससे सभी नैतिक मूल्य नकारे गए। विधायक, लोकसभा सदस्य किस प्रकार से दल बदल करते रहे- बिकते रहे एवं अपने स्वार्थ के लिए अपनी कुर्सी बनाए रखने के लिए किस सीमा तक गिरते रहे- इसका पर्दाफाश महाराज कृष्ण ने अपने उपन्यास 'आसमान नहीं गिरते' में बखुबी किया है। व्यवस्था का स्वयं अंग होते हुए भी जिस साहस का परिचय दिया है एवं भ्रष्टाचार, गली-सड़ी व्यवस्था का तार-तार विश्लेषण कमजोख्म का काम नहीं। विजय एक आई०ए०एस० प्रशासनिक ढांचे की ईमानदार महिला है परन्तु उसे विभिन्न मुख्य मन्त्रियों के हाथों उनकी नापाक अहमीयत एवं पौरुषी गिरी हुई मानसिकता का शिकार होना पड़ता है-केवल इसलिए कि वह उनकी सभी गल्त बातों को मानना अस्वीकार कर देती है। हालांकि सभी जानते हैं कि वर्मा पहले दर्जे का बेईमान, रिश्वतखोर एवं चरित्रहीन व्यक्ति है, वह गल्त ढंग से विधायकों की मदद करता है। उनके चुनाव में उद्योगपतियों से पैसा बटोर कर मन्त्रियों एवं मुख्य मन्त्रियों की सेवा करता है इसलिए वह सहानुभूति का ही नहीं अपितु दया का पात्र बन जाता है। भ्रष्ट होते हुए भी मुख्य मन्त्री एवं उनकी मुंह लगी कोमलपुरी वर्मा को बचाने के लिए मिसेज विजय को स्थानान्तरित कर देते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि उपन्यासकार ने ब्यूरोक्रेसी की यातनाओं को भी हमारे सामने उघाड़ कर रखा है। जनसाधारण यही समझता है कि प्रशासनिक ढांचा ही सम्भवतः खराब है परन्तु जिस कुशलता से प्रशासनिक ढांचें की मजबूरियों को काव साहब ने हमारे सामने रखा हैं, साहस का काम है। प्रशासनिक ढांचे में भी गुटबन्दी एवं भ्रष्टाचार का बोलबाला है, वह भी एक दूसरे को नीचा दिखाने एवं राज-नीतिक गुटबंदियों के निकट आकर लाभ उठाने में व्यस्त दीखते हैं। भाई-भतीजाबाद की प्रवृति जोरों पर है। जिसको तोड़ सकना बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। इसी ढांचे की छत्रछाया में पनपती

हुई एक सामाजिक एवं धार्मिक अव्यवस्था पर भी गहरी चोट उपन्यासकार ने की हैं। स्वामी त्रिभुवननाथ का परिवेश भी कम भ्रष्टाचार का नहीं। उसके अड्डे पर मुख्य मन्त्री से लेकर उद्योगपति, आई०ए०एस० आफिसर, पुलिस अधिकारी सभी सर नवाते हैं। यूं तो लगता है कि सभी पर धर्मान्धता की मोहिनी छाई हुई है एवं सभी उसका शिष्यत्व प्राप्त करने में लीन हैं परन्तु वस्तु स्थिति इससे अलग है। बड़े-बड़े अफसर इसलिए उसके पास जाते है कि उसकी कृपा दृष्टि रहने पर उनके तबादले नहीं होगें जबकि वह उन पर किए गए छोटे-छोटे एहसानों के बदले उनसे बहुत बड़ा लाभ वसूलता है। स्वामी का भ्रष्ट अड्डा स्मलिंग एवं अन्य भ्रष्ट प्रवृत्तियों में लीन है परन्तु जैसे ही उसका राज खुलता है वह पुलिस एवं अन्य कर्मचारियों को धोखा देकर विदेश भाग जाता है। इस सबके पीछे जो त्रासदीं है वह है प्रशासनिक ढांचे की अपनी 'ईन्वाल्टमैंन्ट'। स्वामी का भागना ही सब के लिए खैरियत है-इसलिए उसे भागने में सफलता मिलती है। अस्तु, महाराज कृष्ण काव की पैनी दृष्टि दूर तक बेधती नजर आती है। यह वह भविष्य-वाणी थी जिसका पर्दाफाश भारतीय मंच पर हाल ही में हुआ। सफल प्रस्तुतिकरण के लिए साधुवाद।

पुस्तक का नाम	— आसमान नहीं गिरते
लेखक	— महाराज कृष्ण काव
प्रकाशक	— पराग प्रकाशन (दिल्ली)
पृष्ठ	—147
मूल्य	—रु. 30/-

अकादमी द्वारा साहित्य पुरस्कार वितरण समारोह

दिनांक 26 मार्च, 1988 को शिमला स्थित गेयटी थियेटर हाल में हिमाचल, कला, संस्कृति और भाषा अकादमी द्वारा वर्ष 1985 व 1986 के अकादमी साहित्य पुरस्कारों से प्रदेश के पांच साहित्यकारों को सम्मानित किया गया। अकादमी द्वारा संस्कृत, हिन्दी, पहाड़ी, उर्दू व अंग्रेज़ी भाषाओं पर प्रतिवर्ष प्रतिभाषा तीन पुरस्कार दिए जाते हैं। इस बार प्रविष्टियां कम तथा निर्धारित मापदण्डों के अनुरुप पुस्तकें प्राप्त न होने के कारण दो वर्षों के पांच ही पुरस्कार दिए जा सके।

वित्तायुक्त (वित्त) एवं सचिव (भाषा संस्कृति) श्री महाराजकृष्ण काव ने अपने स्वागत भाषण में अकादमी के कार्यों की सराहना करते हुए इनमें अधिक गतिशीलता लाने पर बल दिया। उन्होंने यह भी आश्वासन दिया कि अकादमी के कार्यों हेतु धन की कमी नहीं आने दी जाएगी। श्री काव ने समारोह के अध्यक्ष संसद सदस्य प्रो० नारायण चन्द पराशर का आभार व्यक्त किया कि इतनी व्यवस्तता के बावजूद उन्होंने समय निकाल कर इस समारोह कि अध्यक्षता स्वीकार की।

प्रो० नारायण चन्द पराशर ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इस बात पर संतोष व्यक्त किया कि जिन उद्देश्यों के लिए अकादमी की स्थापना की गई थी, वह उनमें खरी उतरी है। उन्होंने सुझाव दिया कि हिमाचली लेखकों की प्रकाशित पुस्तकों की विक्रय व्यवस्था अकादमी को करनी चाहिए ताकि लेखकों को उनके कार्य का समुचित पारिश्रमिक प्राप्त हो सके।

इससे पूर्व प्रो० पराशर ने अकादमी द्वारा आयोजित दिनांक 26 मार्च से 29 मार्च, 1988 तक चली पुस्तक एवं कला-प्रदशनी का भी उद्घाटन किया। इस प्रदर्शनी में हिमाचली लेखकों, कलाकारों की पुस्तकों, चित्रों तथा धातु व काष्ठ मूर्तियों को प्रदर्शित किया गया।

अकादमी के सचिव डॉ० बंशीराम शर्मा ने अकादमी का प्रगति विवरण प्रस्तुत करते हुए अब तक अकादमी साहित्य पुरस्कारों से सम्मानित किए गए विद्वानों की सूची श्रोताओं के समक्ष रखी।

वर्ष 1985 के लिए हिन्दी काव्य में श्रीमती रेखा को उनकी पुस्तक "अपने हिस्से की धूप" के

लिए पुरस्कृत किया गया। श्रीमती रेखा हिन्दी की संवेदनशील कवयित्री हैं। पुरस्कृत काव्य संग्रह की कविताओं में भाषा का ताजा स्वरुप देखने को मिलता है। अधिकतर कविताएं अंतर व स्वर प्रधान होते हुए भी सामाजिक यथार्थ को छूती हैं और इनमें गहरे दर्द की अनुभूति उभरती चली जाती है। श्रीमती रेखा शिमला के राजकीय महाविद्यालय में अंग्रेजी की प्राध्यापिका हैं।

हिन्दी शोध/समीक्षा/संस्कृति व निबन्ध वर्ग में डॉ० मनोहर लाल को उनकी पुस्तक "माटी मेरे गांव की" के लिए वर्ष 1985 के पुरस्कार से सम्मानित किया गया। पुरस्कृत पुस्तक हलके फुलके ललित निबन्धों का संग्रह है। भाषा काव्यमय और प्रांजल है। निबन्ध पढ़कर पाठक निर्वैयक्ति होकर कांगड़ा की उपत्यकाओं की सांस्कृति और नैसर्गिक गरिमा में रमण करने लगता है। निबन्धकार अपनी रचनाओं के माध्यम से चिन्तक, भावुक, प्रकृतिप्रेमी तथा व्यंग्यकार के रुप में प्रभावित करता है। यह संयोग मात्र ही है कि डॉ० लाल को उनके समग्र साहित्यिक योगदान के दृष्टिगत इन्हें वर्ष 1987 के पं० चन्द्रधर शर्मा/गुलेरी राज्य सम्मान से इसी पुस्तक पर सम्मानित किया गया। किन्ही अपरिहार्य कारणों से डॉ. लाल पुरस्कार प्राप्त करने नहीं आ पाए।

डॉ० मनोहरलाल का जन्म गांव बडेट, जिला ऊना (हि० प्र०) में 20 सितम्बर, 1948 को हुआ। आजकल यह श्री राम कालेज कॉमर्स दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी के विभागाध्यक्ष हैं।

इसी वर्ष के लिए श्री बलदेव सिंह ठाकुर को पहाड़ी भाषा की काव्य विधा में उनकी पुस्तक "हवा दक्खणी" के लिए सम्मानित किया गया। श्री ठाकुर का जन्म गांव सुलह, तह० पालमपुर जिला कांगड़ा (हि.प्र.) में 3 जून, 1929 को हुआ। पहाड़ी और हिन्दी में साहित्य सर्जन करने वाले श्री ठाकुर से इससे पूर्व अल्पज्ञात ही रहे।

'हवा दक्खणी' कवि द्वारा गत दस वर्षों की अवधि में लिखी गई फुटकर कविताओं का संग्रह है। रचनाएं अनुभूति तथा संवेदना में गहरापन लिए हैं। इनमें मार्मिकता, दार्शनिकता प्रकृति का मानवीकरण तथा आंचलिक सौन्दर्य के साथ-साथ गद्यात्मक चित्रण मन के भीतर तक समा जाता है। कविताओं की मौलिकता और संवादात्मक शैली कवि से उच्च कोटि की काव्य रचना की आशा की ओर संकेत करती है।

वर्ष 1985 के लिए अन्तिम पुरस्कार श्री राजेश कुमार औज़ को उर्दू की काव्य विधा के अन्तर्गत उनकी पुस्तक 'गुलेतर' के लिए प्रदान किया गया। 'गुलेर' शगुफ्ता शायरी का खूबसूरत नमूना है। इस संग्रह की कविताओं में रंगों और खुशबू की एक खास दुनियां आबाद है। इनमें देश प्रेम, रहस्यवाद, आध्यात्मिकता और श्रृंगारिकता का आकर्षक मिश्रण समाहित है। इनकी शायरी में एहसासात की सदाकत, इज़हार की सादगी व मिठास तथा गज़लों में नगमगी महसूस की जा सकती है। 2 दिसम्बर, 1937 को पैदा हुए श्री औज़ सम्प्रति हि० प्र० पुलिस विभाग में महानिरिक्षक पद पर कार्यरत रहते हुए भी अदबी सरगर्मियों से बाबस्ता हैं।

वर्ष 1986 के लिए मात्र एक पुरस्कार दिया गया जिसे प्राप्त करने का श्रेय संस्कृत, हिन्दी और पहाड़ी के वयोवृद्ध साहित्यकार पं० भवानीदत्त शास्त्री को उनकी पुस्तक "लेरा' धारांरी'

के लिए मिला। 5 दिसम्बर,1911 को मण्डी (हि०प्र०) में पैदा हुए श्री शास्त्री एक अच्छे चित्रकार भी हैं।

"लेराधारा री" में संकलित कविताएं प्रकृति चित्रण, स्थानीय परिस्थितियों, लोक मुहावरों तथा लोकोक्तियों की कलात्मक अभिव्यक्ति के कारण पाठकों पर प्रभाव छोड़ने में सक्षम हैं। कवि अपनी लम्बी साहित्य साधना द्वारा अर्जित परिपक्वता व पैठ के कारण इस कृति को श्रेष्ठ-रचना के रूप में प्रस्तुत करने में सफल रहा है।

अकादमी द्वारा उपरोक्त प्रत्येक भाषा पर तीन-तीन पुरस्कार प्रति पुरस्कार दो हजार एक सौ रूपये की राशि, एक पट्टका तथा सम्मान पत्र दिया जाता है।

समारोह के अन्त में प्रदेश के भाषा एवं संस्कृति विभाग के निदेशक श्री श्रीनिवास जोशी ने पुरस्कार प्राप्त कर्ताओं को बधाई दी और सभी उपस्थित जनों का, समारोह में पुरस्कृत विद्वानों व आयोजकों का उत्साह बढ़ाने हेतु धन्यवाद व्यक्त किया तथा भविष्य में इस समारोह को और अधिक गरिमामय व भव्य बनाने का आश्वासन दिया।

इस अवसर पर अकादमी की नव प्रकाशित पुस्तक हिमाचल प्रदेश लोक जीवन और परम्पराएं पुस्तक का भी विमोचन किया गया।

—रमेश जसरोटिया

गेयटी थिएटर में आयोजित पुरस्कार समारोह में पुरस्कृत साहित्यकारों के साथ उपाध्यक्ष अकादमी, प्रो० नारायण चन्द पराशर, संसद सदस्य तथा श्री महाराज कृष्ण काव, वित्तायुक्त 'वित्त' एवम् सचिव (भाषा संस्कृति) हि०प्र० पुरस्कार वितरण समारोह की रिपोट के साथ

गतिविधियां

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी के तत्वावधान में 2 फरवरी, 1988 को शिमला के गेयटी थियेटर में मरे शीगल द्वारा लिखित, श्री श्रीनिवास श्रीकान्त द्वारा अनुवादित नाटक "द टाईपिस्ट" का मंचन श्री अशोक कुमार हंस के निर्देशन में किया गया।

5 से 16 फरवरी, 1988 तक दिल्ली के प्रगति मैदान में आठव अखिल भारतीय पुस्तक मेले में भाषा संस्कृति विभाग तथा अकादमी द्वारा एक संयुक्त प्रदर्शनी लगाई गई।

16 से 26 फरवरी, 1988 तक शिवरात्रि उत्सव के अवसर पर जिला मण्डी में एक पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया।

26 मार्च, 1988 को गेयटी थियेटर शिमला में संसद सदस्य प्रो० नारायण चन्द पराशर जी की अध्यक्षता में वर्ष 1985-86 के साहित्य पुरस्कार वितरण समारोह का आयोजन किया गया। वर्ष 1985 के लिए हिन्दी काव्य वर्ग में श्रीमती रेखा को उनके काव्य संग्रह अपने 'हिस्से की धूप' शोध लोक साहित्य, निबन्ध, संस्कृति और हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं के अन्तर्गत डॉ० मनोहर लाल को उनकी पुस्तक 'माटी मेरे गांव की' के लिये, पहाड़ी काव्य विधा में श्री बलदेव ठाकुर को उनकी पुस्तक 'हवा दक्खणी' तथा उर्दू काव्य के अन्तर्गत श्री राजेश कुमार 'औज' को उनकी पुस्तक 'गुलेतर' के लिए पुरस्कार दिया गया। वयोवृद्ध साहित्यकार पं० भवानी दत्त शास्त्री जी को उनकी पुस्तक 'लेरां धारां री' के लिए वर्ष 1986 का साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया।

26 मार्च से 29 मार्च 1988 तक गेयटी थियेटर में ही एक पुस्तक एवम् कला प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इस प्रदर्शनी में हिमाचल के लेखकों की पुस्तकों और काष्ठ और धातू की मूर्तियों का प्रदर्शन किया गया।

हिमाचल प्रदेश के पारम्परिक लोक वाद्य यन्त्र और वेशभूषा की खरीद योजना के अन्तर्गत 27 उच्च व वरिष्ठ माध्यमिक पाठशाला को, 4000/- रूपए (चार हजार) तथा महाविद्यालय को रुपए 6000/- (छः हजार) मात्र दिया जाता है।

कलाकृतियों की खरीद तथा वितरण योजना के अन्तर्गत जनवरी 88 से मार्च 88 तक 204 स्लाईडें डब्लैप करवाई गई तथा भित्ति चित्रों के छः सैट बेचे गए। गुरु शिष्य परम्परा योजना के अन्तर्गत छात्रवृतियों तथा पारिश्रमिक के रुप में श्री चन्दुलाल तथा उनके शिष्यों को रुपये 4400/- (चार हजार चार सौ) मात्र दिये गये।

नाटक टाईपिस्ट के लिए मुख्य अतिथि श्री सागर चन्द नैय्यर शिक्षा मन्त्री एवं वरिष्ठ उपाध्यक्ष अकादमी, श्रीमती नैय्यर, श्री श्रीनिवास जोशी निदेशक भाषा एवं संस्कृति तथा डॉ० बंशीराम शर्मा सचिव अकादमी।

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी शिमला-१

अकादमी के प्रकाशनों की सूची

क्र०	पुस्तक का नाम	विवरण	प्रकाशन वर्ष	मूल्य
1	पहाड़ी लोक रामायण (पहाड़ी हिन्दी अनुवाद सहित)	हिमाचल में प्रचलित राम कथा के सम्बन्ध में समीक्षात्मक लेखों और निबन्धों का संकलन	1974	12.00
2.	छन्नाट (पहाड़ी भाषा में)	संस्कृत के महाकवि भास के छः नाटकों का हिमाचल की पहाड़ी भाषा में अनुवाद	1975	12.00
3.	ऋतम्भरा (संस्कृत में)	हिमाचल के संस्कृत कवियों की कविताओं का संकलन	1975	6.00
4.	श्यामला (हिन्दी)	हिमाचल के हिन्दी कवियों की कविताओं का संकलन	1976	15.00
5.	माला़ रे मण्के	हिमाचल के पहाड़ी कवियों की कविताओं का संकलन	1976	6.00
6.	इन्दु काव्यम् (संस्कृत में)	हिमाचल प्रदेश के सिरमौर और कांगड़ा जनपदों की ऐतिहासिक गाथा पर आधारित काव्य संग्रह	1976	15.00
7.	कथा सरवरी (भाग-I)	सिरमौर, महासू तथा कुल्लू जनपदों की लोक कथाएं-पहाड़ी में	1977	2.00
8.	कथा सरवरी (भाग-2)	चम्बा, कांगड़ा, मण्डी तथा बिलासपुर जनपदों की लोक-कथाओं का संग्रह-पहाड़ी में	1977	2.00
9	तीन लोक नाटिकाएं (हिन्दी में)	हिमाचल में प्रचलित लोक-कथाओं के आधार पर अकादमी द्वारा संयोजित विरचित तीन लोक नाटिकाएं	1977	5.00
10.	देई जुल्फू (पहाड़ी-हिन्दी अनुवाद सहित)	कुल्लू (औटर सिराज) में प्रचलित दशी काव्य के आधार पर विरचित कथात्मक काव्य रूप	1978	6.00

11·	तरतीब (उर्दू में)	हिमाचल के उर्दू शायरों के कलामों का मंजमूआ	1978	15.00
12.	हिमाचल के संस्कार गीत (हिन्दी में अनुवाद सहित)	हिमाचल के संस्कार गीतों का संकलन	1982	20.00
13.	पहाड़ी रचना सार (पहाड़ी मे)	पहाड़ी मूलक निबन्ध, कहानियां, कविताएं तथा जनजातीय क्षेत्रों की बोलियों का संकलन	1982	10.00
14.	मणिमहेश	मणिमहेश बंगला पुस्तक का हिन्दी अनुवाद	1984	20.00
15.	भर्तृहरि लोक गाथा पहाड़ी-हिन्दी	हिमाचल के विभिन्न भागों में प्रचलित भर्तृहरि लोक कथा अनुवाद सहित	1984	15.00
16.	Discriptive Bibil-ography of Hima-chal Pradesh	हिमाचल-ज्ञान कोष योजना के अन्तंगत प्रकाशित सन्दर्भ ग्रन्थ (इसमें हिमाचल प्रदेश से सम्बन्धित साहित्य का पूर्ण विवरण संकलित है)	1985	100.00
17.	वेणी संहार (मण्ड-याली)	भट्ट नारायण कृत वेणी संहार का मण्डयाली में अनुवाद	1986	15.00
18.	हिमाचल प्रदेश, घटना और श्रमप्रधान गीत	हिमाचल प्रदेश के घटना एवं श्रमप्रधान गीतों का संकलन	1987	2.50
19.	बजूद-ओ-अदम	स्व० लाल चन्द प्रार्थी की गज़लों एवं नज़मों का संकलन	1987	25.00
20.	हिमाचल प्रदेश, लोक जीवन और परम्पराएं	हिमाचल प्रदेश के लोक साहित्य जनजातीय संस्कृति से सम्बन्धित लेखों का संग्रह।	1987	25.00
21.	साहित्यकार-कलाकार विवरणिका	हिमाचल के साहित्यकारों और कलाकारों का विवरण	1988	30.00

सोमसी

फार्म—IV
(देखें नियम—8)

1.	प्रकाशन का स्थान :	शिमला
2.	प्रकाशन अवधि :	त्रैमासिक (जनवरी, अप्रैल, जुलाई, अक्तूबर में प्रकाश्य
3.	मुद्रक का नाम : राष्ट्रीयता पता :	मेजर संसार चन्द भारतीय ग्रीन फील्ड कॉटेज, शिमला
4.	प्रकाशक का नाम : राष्ट्रीयता : पता :	बंशी राम शर्मा भारतीय सचिव, हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी, शिमला-171001
5.	सम्पादक का नाम : राष्ट्रीयता : पता :	डॉ० बंशी राम शर्मा, भारतीय सचिव, हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी, शिमला-171001

मैं, डॉ० बंशी राम शर्मा, घोषणा करता हूं कि ऊपर दिए गए तथ्य मेरे जानकारी और विश्वास के अनुसार पूर्णतया सही है।

हस्त/-
डॉ० बंशी राम शर्मा

श्रद्धान्जलि—

हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध बाल साहित्य लेखक, प्रखर चिन्तक और आध्यात्मिक विचारों के धनी श्री सन्तराम वत्स्य, जिन्होंने दो सौ के लगभग पुस्तकें लिखी, का निधन ६४ वर्ष की आयु में दिनांक २५ मार्च, १९८८ की प्रातः हृदय गति रुकने से हो गया। श्री वत्स्य का जन्म ज़िला कांगड़ा के धनीरी गांव में 12 मई, 1923 को हुआ था। वत्स्य जी की कई पुस्तकों को भारत सरकार तथा अकादमियों द्वारा पुरस्कृत किया गया। बाल साहित्यकार के रूप में बाल वर्ष में उन्हें दिल्ली साहित्य परिषद् द्वारा सम्मानित किया गया। वर्ष 1978 से 1982 तक वह हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी के सदस्य भी रहे। उन्होंने प्रदेश के कई साहित्यकारों की पुस्तकें मुद्रित करवाकर उन्हें आगे लाने का महान् कार्य किया।

हिमाचल अकादमी द्वारा इस सपूत के अचानक निधन पर एक शोक प्रस्ताव पारित किया गया।

एक अन्य साहित्यकार देवेन्द्र सिंह चौहान का लम्बी बीमारी के पश्चात् 23 मार्च, 1988 को स्नोडन अस्पताल में निधन हो गया। इनके आकस्मिक निधन से प्रदेश के एक नौजवान और होनहार लेखक असमय ही बिछुड़ गए। स्व० चौहान शिमला जिले के चौपाल क्षेत्र के रहने वाले थे। यह पिछले दस वर्ष से लेखन कार्य में कार्यरत थे। इन्होंने कहानियों के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक, निबन्ध तथा रेडियो नाटक आदि भी लिखे।

सोमसी, अप्रैल 1988

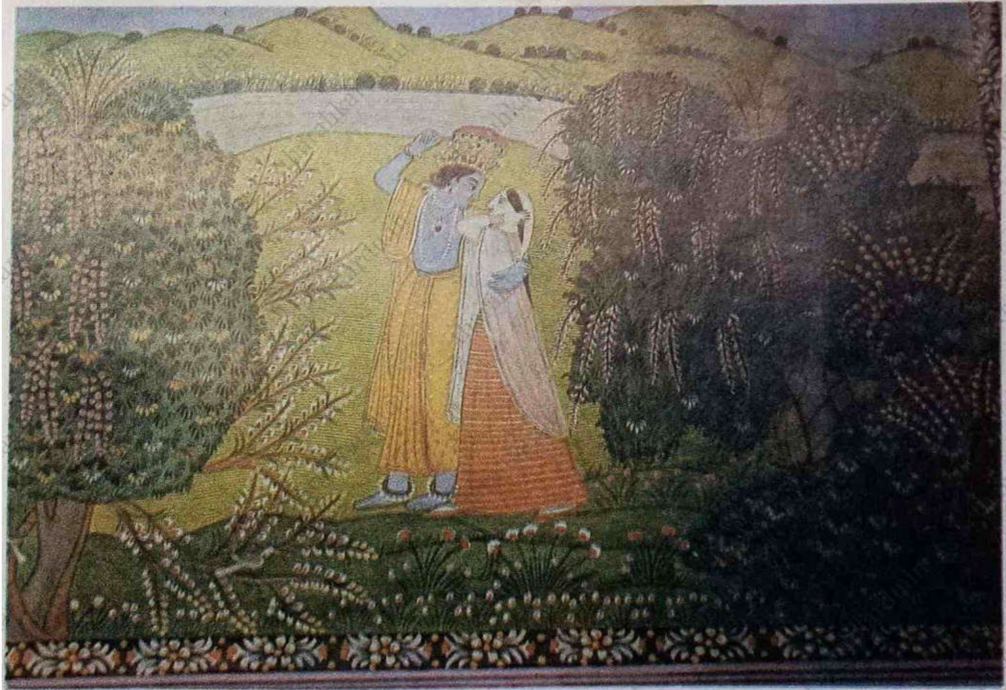

राधा-कृष्ण

H.A.A.C.L. पंजी० 28271/75

सोमसी, अप्रैल 1988

किन्नर-कलाकार

Printed at:
New Printers, Green Field Cottage, Near Ice Skating Rink, Shimla. Ph: 6660